

ISSN: 0971-8478

अप्रैल 2018

₹ 22

आजकल

1945 से निरंतर प्रकाशित

साहित्य और संस्कृति का मासिक



राहुल सांकृत्यायन
125 वीं जयंती पर विशेष

प्रकाशन विभाग की पुस्तकों का लोकार्पण



प्रकाशन विभाग और इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र 'अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस' के परिप्रेक्ष्य में इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र के त्रिदिवसीय कार्यक्रम 'शक्ति पर्व' के दौरान 'भारतीय स्त्री-परंपरा और अपेक्षाएं' नामक संगोष्ठी आयोजित हुई। इस कार्यक्रम में समकालीन महिलाओं से जुड़ी समस्याओं, परंपरागत और सामाजिक परिवेश तथा महिलाओं के समक्ष चुनौतियों के बारे में विभाग द्वारा प्रकाशित स्त्री केंद्रित पुस्तकों के आलोक में प्रतिष्ठित महिला लेखिकाओं सुश्री मृदुला गर्ग, सुश्री नासिरा शर्मा और सुश्री मनीषा के सान्निध्य में परिचर्चा आयोजित की गई। इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र के सदस्य सचिव और चिंतक डॉ. सच्चिदानंद जोशी ने इस सत्र की अध्यक्षता की।

'शक्ति पर्व' के समापन के अवसर पर प्रकाशन विभाग की भारत की दो महान वीरांगनाओं पर तेरह भाषाओं में प्रकाशित पुस्तकों का माननीय सूचना और प्रसारण मंत्री श्रीमति स्मृति जुबिन ईरानी के द्वारा लोकार्पण हुआ। ये पुस्तकें हैं 'रज़िया सुल्तान' और 'रानी लक्ष्मीबाई'। इन दोनों ही विलक्षण महिलाओं ने अपने युग की चुनौतियों से संघर्ष करते हुए प्रेरणात्मक नेतृत्व दिया और वीरता तथा शौर्य की मिसाल बन गईं।

ये पुस्तकें प्रकाशन विभाग की 'एक भारत, श्रेष्ठ भारत' शृंखला के अंतर्गत प्रकाशित की गई हैं। राष्ट्रीय विविधता में एकता की भावना के अनुरूप ऐसी पंद्रह पुस्तकों को प्रमुख भारतीय भाषाओं में प्रकाशित करने का अभियान शुरू किया गया। ये पुस्तकें मूल रूप से हिंदी अथवा अंग्रेजी में प्रकाशित की गई थीं और शीघ्र ही सभी प्रमुख भारतीय भाषाओं में इन प्रेरणास्पद पुस्तकों के संस्करण उपलब्ध हो जाएंगे। अब तक ऐसी पैसठ से अधिक पुस्तकें प्रकाशित की जा चुकी हैं। इन भारतीय भाषाओं में संस्कृत संस्करण भी शामिल है जो हमारी राष्ट्रीय अस्मिता की भाषा है।

भारत की युवा पीढ़ी के लिए विशेष रूप से प्रेरणादायक इन पुस्तकों में महान व्यक्तियों के जीवन-चरित, स्वतंत्रता-संग्राम से जुड़े प्रसंग और विविधता में एकता की अनेक छटाएं मौजूद हैं।

प्रकाशन विभाग ने हाल के वर्षों में भारतीय संस्कृति के संवर्धन के लिए कार्यरत अनेक संस्थाओं के साथ प्रकाशन सहयोग आरंभ किया है। इस शृंखला की पहली कड़ी के रूप में विभाग ने 'सस्ता साहित्य मंडल' के साथ मिलकर अनेक पुस्तकों का प्रकाशन किया है जिसकी नवीनतम कड़ी 'प्राचीन भारत के स्त्री-रत्न' नामक पुस्तक का प्रकाशन है। इस पुस्तक में वैदिक तथा औपनिषदिक काल की यशस्वी विदुषी महिलाओं के जीवन-चरित शामिल किए गए हैं जिन्होंने भारतीय मनीषा को आगे बढ़ाया और स्त्री-शक्ति की मजबूत मिसाल बनी। इस पुस्तक का भी सूचना एवं प्रसारण मंत्री ने लोकार्पण किया।

स्थापित 1945

आजकल

वर्ष : 73, अंक : 12, पूर्णांक : 881
अप्रैल 2018, चैत्र-वैशाख 1940

वरिष्ठ संपादक

राकेशरेणु

संपादक

फरहत परवीन

आवरण सज्जा : राजेश कुमार

संपादकीय पत्र व्यवहार :

संपादक

आजकल, प्रकाशन विभाग

कमरा नं. 601डी, सूचना भवन

सी.जी.ओ. कॉम्प्लेक्स, लोदी रोड,

नई दिल्ली-110003

फोन : 2436 2915

ईमेल : ajkalkhindi @ gmail.com

website : www.publicationsdivision.nic.in

फेसबुक : www.facebook.com/

publicationsdivision



संयुक्त निदेशक (उत्पादन) :

वी. के. मीणा

सदस्यता शुल्क :

वार्षिक : 230 रुपये, दो वर्ष : 430 रुपये,

तीन वर्ष : 610 रुपये

सदस्यता संबंधी पूछताछ :

गोपाल के. एन. चौधरी

संपादक (प्रसार)

कमरा नं. 48-53, सूचना भवन

सीजीओ कॉम्प्लेक्स, लोदी रोड,

नई दिल्ली-110003

फोन नं. 011-24367453

ईमेल : pdjucir @ gmail.com

टाइपसेट : एजुकेशनल स्टोर्स, लेजर टाइप सेटिंग

इस अंक में

लेख

राहुल सांकृत्यायन पर विशेष

- | | |
|---|----------------------|
| 7. राहुल सांकृत्यायन : एक विराट व्यक्तित्व | - गुणाकर मुले |
| 10. 'बोल्गा से गंगा' इतिहास की समीचीन समझ | - महेश दर्पण |
| 18. 'हिंदी-उर्दू-हिंदुस्तानी' का सवाल | - मंगलमूर्ति |
| 21. महापंडित राहुल सांकृत्यायन (संस्मरण) | - विष्णुचंद्र शर्मा |
| 24. 'क्या करें' : राहुल सांकृत्यायन | - नरेंद्र शुक्ल |
| 25. राहुल सांकृत्यायन की महायात्राएं | - शुभांगी श्रीवास्तव |
| 27. दिमागी गुलामी (दस्तावेज) | - राहुल सांकृत्यायन |
| 29. राहुल सांकृत्यायन : संक्षिप्त जीवन-क्रम | - — |
| 31. राहुल वाङ्मय | - — |

लेख

- | | |
|--|----------------------|
| 37. पंजाबी सूफी-कविता के सप्तऋषि | - नरेश |
| 43. यह, वह देश तो नहीं (मॉरिशस डायरी) | - देवेन्द्र चौबे |
| 47. साहित्य बचा रहेगा (अलका सरावगी से साक्षात्कार) | - अरविंद कुमार |
| 55. संगीत आजकल : महान् संगीतज्ञों का पुण्य स्मरण | - पं. विजयशंकर मिश्र |

श्रद्धांजलि

- | | |
|------------------------------------|-----------------------|
| 49. रूपहटो पदों की मलिका | - ज्ञान प्रकाश पांडेय |
| 51. प्रेम एवं मनुष्यता के विरल कवि | - — |

कहानियां

- | | |
|---------------|------------------|
| 33. बारिश में | - शर्मिला जालान |
| 40. तितली | - विजयश्री तनवीर |

कविताएं

- | | |
|-----------------|-----------------------------|
| 53. चार कविताएं | - रवींद्र स्वप्निल प्रजापति |
| 54. तीन कविताएं | - एस.एस. पंवार |

पुस्तक परिचय

- | | |
|--|--------------|
| 58. आदिकवि और उनकी रामायण
हमारे संस्कार और संस्कृति | - कांता रानी |
|--|--------------|

हमारे विक्रय केंद्र : नई दिल्ली: सूचना भवन, सी.जी.ओ. कॉम्प्लेक्स, लोदी रोड, दूरभाष : 011-24367260, लखनऊ : हल नं. 1, दूसरी मंजिल, कोट्टीय भवन, अलीगंज, दूरभाष : 0522-2225455, कोलकाता : 8, एस्लेनेड ईस्ट, दूरभाष : 33-22488030, पटना : बिहार रा. सह. बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ, दूरभाष : 0612-2683407, मुंबई : 701 बी-विंग, सातवीं मंजिल, कोट्टीय सदन केलापुर, नवी मुंबई, दूरभाष : 9522-27570686, बंगलुरु: एफ विंग, कोट्टीय सदन, कोणमंगला दूरभाष : 080-25537244, हैदराबाद : कमरा नं. 204, द्वितीय तल, सी.जी.ओ. टॉवर, कावर्दि गुडा-500080, चेन्नई : राजजी भवन, बेसेट नगर, दूरभाष : 044-24917673, तिरुवनंतपुरम : गवर्मेट प्रेस के निकट, दूरभाष : 041-2330650, गुवाहाटी : पैशन पार रोड, हाउस नं. 4, पी.ओ. विल्लुपुरी-3

प्रसंगवश

राहुल सांकृत्यायन का व्यक्तित्व विराट था। उनके जीवन और कृतित्व को सर्वांगीण रूप में प्रस्तुत करना कभी सरल नहीं रहा, आज तो कदापि नहीं जब उनका लिखा पढ़ने और गुनने वालों की संख्या निरंतर कम होती जा रही है। राहुलजी को गति प्रिय था, उहराव सर्वथा अप्रिय। वे घंटों का काम मिनटों में पूरा कर लेते थे और मिनटों का काम सेकंडों में। यदि उनके पूरे जीवन पर विचार करें तो गतिशीलता उनका प्रमुख गुण बनकर उभरता है। वे जीवनपर्यंत यायावर रहे। एक स्थान से दूसरे स्थान, एक देश से दूसरे देश, एक महादेश से दूसरे महादेश की यात्रा करते रहे। उन्होंने केवल भौगोलिक यात्राएं ही नहीं की। राहुल सांकृत्यायन की यात्राएं जितनी भौगोलिक थीं उससे कहीं ज्यादा मानसिक, वैचारिक, भाषिक और अनुभूतिजन्य थीं। उन्होंने अपने विचार बदले, वस्त्र बदले, और तो और नाम और परिवार भी बदले। विचार को सर पर उठाए रहने के हामी राहुलजी नहीं थे। यही वजह है कि वे संन्यासी बने फिर संन्यास छोड़कर आर्य समाज के प्रचारक बने, उसे भी त्यागकर बौद्ध भिक्षु बने, आखिर में साम्यवाद के पैरोकार बने और उसके बाद गृहस्थ जीवन में प्रवेश करने में भी उन्हें कोई परेशानी नहीं हुई।

हम देखते हैं कि राहुल सांकृत्यायन की परिवर्तनशीलता और गतिशीलता के पीछे उनकी ज्ञान पिपासा और उनके मनोजगत में चलने वाले गहन आंदोलन हैं जो सतत रूप से सक्रिय हैं और उन्हें कहीं संतुष्ट नहीं होने देते और बार-बार नए और बेहतर की तलाश में आगे बढ़ने, नूतन को आजमाने के लिए प्रेरित करते हैं। उनके धर्म, संप्रदाय और पंथ बदलने के पीछे भी वही वैचारिक उद्वेग है जो स्थान, देश और नित नवीन भाषा जानने की उत्कंठा के पीछे है।

ज्ञान पिपासु राहुल का अध्ययन एक विषय तक सीमित नहीं था। वे इतिहास और पुरातत्व के उतने ही बड़े विद्वान थे जितने कि राजनीति और समाजशास्त्र के, दर्शन और विज्ञान के अथवा धर्म और संस्कृति के। उन्होंने इन सब विषयों पर पुस्तकें लिखीं। यही नहीं उन्होंने अनेक यात्रा-वृत्तान्त भी लिखे। 'मेरी जीवन यात्रा' नाम से आत्मकथा लिखी और आलोचना और साहित्य का इतिहास भी रचा। गुणाकर मुले के शब्दों में, यात्राओं से उन्हें बल मिलता था, स्फूर्ति मिलती थी, लेकिन वे शौकिया यायावर नहीं थे। उनकी यात्राएं सोद्देश्य होती थीं। उनका जो विपुल साहित्य है उसकी एक बड़ी वजह उनकी यायावरी से मिलने वाली ऊर्जा है। यात्राओं से अर्जित ज्ञान, अनुभव और इस दौरान किए गए अलग-अलग साहित्य के अध्ययन ने उन्हें विचार समृद्ध, ज्ञान समृद्ध और अनुभव समृद्ध बनाया। राहुलजी की लिखी पुस्तकों की संख्या 140 के आस-पास है जिनमें से 20 पुस्तकें तो सीधे-सीधे उनकी यात्राओं के बारे में हैं। इनमें से एक किताब का नाम ही 'धुमक्कड़ शास्त्र' है। 5 भागों में प्रकाशित आत्मकथा को भी उन्होंने 'मेरी जीवन यात्रा' शीर्षक देना पसंद किया। उन्होंने लगभग समूचे एशिया की पैदल यात्रा की। 70 साल की जीवन अवधि में इतना विपुल साहित्य रच लेने तथा इतनी वैचारिक और भौतिक यात्राएं कर लेने वाला शायद ही कोई दूसरा व्यक्ति हिंदी साहित्य में हुआ हो।

उपन्यासकार के रूप में राहुलजी की ख्याति उनके ऐतिहासिक उपन्यासों के कारण है, जिनके नाम हैं- 'सिंह सेनापति', 'जय यौधेय', 'मधुर स्वप्न', और 'विस्मृत यात्री'। इनमें विशेष उल्लेखनीय पहले दो उपन्यास हैं। 'सिंह सेनापति' में लिच्छवी गण के संघर्ष का चित्रण है और 'जय यौधेय' में यौधेय गण का। पहले उपन्यास के अंत में लेखक ने सिंह सेनापति और तथागत के परस्पर विचार-विनिमय द्वारा बौद्धमत और मार्क्सवाद की समानता पर बल दिया है। राहुलजी की राय में मार्क्सवाद आज की परिस्थिति में बौद्धमत का ही रूपांतर है। दूसरा उपन्यास भी द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के जीवन-दर्शन पर आधारित है।

राहुलजी का सबसे अद्भुत उपन्यास 'बाइसवीं सदी' है जिसका रचनाकाल 1918 है लेकिन यह प्रकाशित 1923 में हो पाया। उन दिनों राहुलजी हजारीबाग जेल में थे। यह ऐतिहासिक नहीं भविष्योन्मुखी उपन्यास है जिसकी कथावस्तु 200 साल आगे की है। 200 साल आगे के जनजीवन की संकल्पना करते हुए इस उपन्यास में राहुलजी लिखते हैं, "अब बिजली का उपयोग अधिक होने से कोयले की उतनी अधिक आवश्यकता नहीं रही। बिजली तैयार होती है नदियों के जलप्रपात से। यह रेल भी उसी बिजली से चलाई जाती है। फिर उसी से हमारी मोटरें चल रही हैं"। (पृष्ठ 15)। इसी उपन्यास में अन्यत्र 'सेबग्राम का बाग' शीर्षक अध्याय में वे कहते हैं कि सेबग्राम में तीन वर्ष के बच्चे ही विद्यालय में प्रवेश कर जाते हैं और बीस वर्ष की उम्र में शिक्षा समाप्त कर जीविकोपार्जन के लिए बाहर चले जाते हैं जिनमें से बहुत कम वापस लौटते हैं। उनका भविष्य कथन आज उपन्यास के रचनाकाल के 100 साल बाद ही फलित हो चुका है। रेलगाड़ियां आज बिजली से चलती हैं, कारें भी बिजली से चलने लगी हैं और इनमें आगे तेजी आने की संभावना है। कोयले के उपयोग को निरंतर हतोत्साहित किया जा रहा है तथा शिक्षण और अध्ययन के क्षेत्र में लंबे समय तक अध्ययनरत रहने और 'शिक्षा' की बजाय 'ज्ञान प्राप्ति' की प्रवृत्ति कम हो रही है और जल्दी से जल्दी काम चलाऊ और रोजगारपरक शिक्षा प्राप्त कर आजीविका वाले काम-काज शुरू कर देने की ओर रुझान बढ़ा है। कृषि आधारित ग्रामीण व्यवस्था निरंतर कमजोर पड़ती जा रही है और शिक्षा प्राप्ति के लिए गांव से बाहर निकले बच्चे पढ़-लिख लेने के बाद अपवादस्वरूप ही जीविकोपार्जन के लिए गांव का रुख करते हैं।

राहुलजी की 125वीं जयंती पर 'आजकल' के इस अंक को संयोजित करते हुए कई अवरोध आए और विद्वान लेखकों की व्यस्त दिनचर्या जनित अनुपलब्धता से भी रूबरू होना पड़ा। यह बोध भी लगातार घनीभूत होता रहा कि अपने पुरोधा साहित्यकारों की अवहेलना कर हिंदी साहित्य और समाज किस शून्य की ओर बढ़ रहा है!



विस्तृत और व्यापक

आप नियमित रूप से मासिक 'आजकल' भेजते हैं, अच्छा लगता है। खासकर इस पत्रिका के संपादन से आपके जुड़ने के बाद बल्कि इस पत्रिका के नए अंक को देखने के लिए हमेशा मेरे मन में ललक और उत्सुकता बनी रहती है। पत्रिका का फरवरी 2018 अंक हिंदी के वरिष्ठतम कथाकार कृष्णा सोबती पर केंद्रित है। इस अंक की रचनाओं का जिस तरह आपने संयोजन किया है, बहुत अच्छा लगा। आज हिंदी की साहित्यिक पत्रिकाओं के प्रधान संपादक, संपादकीय सलाहकार या वरिष्ठ संपादक प्रायः जड़ाऊ या घराऊ होते हैं। वे करते कुछ नहीं हैं, अपने नाम से पत्रिका की शोभा या चमक बढ़ाते हैं।

कृष्णा सोबती के लेखन का क्षेत्र बहुत विस्तृत और व्यापक है। अनुभव के साथ उनके लेखन और शैली में विविधता भी है। सविता सिंह, प्रयाग शुक्ल, अनामिका, अर्चना वर्मा, गिरीधर राठी के लेख

अच्छे लगे। अन्य सामग्री भी। प्रियदर्शन से सोबतीजी की मुलाकात दिलचस्प है। वर्तमान में लौटती हुई कृष्णाजी एक आलोचक द्वारा एक कार्यक्रम में उनसे पूछे गए सवाल का उल्लेख करती हैं। वह तथाकथित आलोचक मैं ही था। लगभग 10-15 वर्ष पूर्व त्रिवेणी सभागार में राजकमल प्रकाशन द्वारा आयोजित 'लेखक से भेंट' कार्यक्रम था। कृष्णाजी के वक्तव्य के बाद प्रश्नों का सिलसिला शुरू हुआ। तबतक कृष्णाजी का प्रकाशित संपूर्ण साहित्य मैंने पढ़ रखा था। मेरे मन में उनके लेखन को लेकर एक द्वंद्व और उधेड़बुन थी। मेरे सवाल को उन्होंने कोड़ा उलट-पुलट दिया है लेकिन मेरे सवाल का निहितार्थ या भावार्थ वही था। मुझे यह पढ़कर हैरानी हुई कि इतने वर्षों बाद भी मेरे जैसे पाठक के सवाल का जवाब उन्होंने अक्षरशः उद्धृत किया है।

मानना पड़ेगा कि कृष्णाजी की स्मृति गूजब की है। उनके लेखन का लोहा तो मैं पहले भी मान चुका था और अब भी उनके सामने अपना सर झुकाता हूँ। फिर भी मैं कहना चाहता हूँ कि उनके जवाब से न तब मैं संतुष्ट हुआ और न अब। दरअसल मेरे सवाल के केंद्र में उनके व्यक्तित्व और लेखन में अंतर्विरोध था। वे चुपचाप गोलमोल जवाब देकर निकल गईं। मेरा सवाल सत्ता से ही संबंधित नहीं था, उनके द्वारा एक अश्लील शब्द के व्यवहार से भी था। बहरहाल अब इस प्रसंग

का मैं पटाक्षेप करना चाहता हूँ। मेरी शुभकामना है, भविष्य में भी 'आजकल' को इसी तरह निकालते हुए अपनी धार दीजिए।

—भारत भारद्वाज, मयूर विहार, फ़ेज-1, दिल्ली

भव्य छवि

'आजकल' फरवरी 2018 अंक में ख्यातिलब्ध वरिष्ठ रचनाकार कृष्णा सोबती की सोहबत में कुछ क्षण व्यतीत करना अच्छा लगा। आवरण पर उनकी भव्य छवि देख मन प्रसन्न हुआ। सोबतीजी के विराट व्यक्तित्व और रचना-कर्म से संबंधित सविता सिंह, प्रयाग शुक्ल, अनामिका, अर्चना वर्मा, गिरधर राठी, पल्लवी प्रकाश, प्रियदर्शन, कविता, अनुराधा गुप्ता, विपिन चौधरी तथा ज्योति चावला के आलेखों और संस्मरणों को पढ़ा।

प्रख्यात फिल्म अभिनेता शशि कपूर का निधन भारतीय सिनेमा के लिए बहुत बड़ी क्षति है। उन्होंने अपनी उम्र अभिनय प्रतिभा के बल पर दशकों तक भारतीय सिने प्रेमियों के दिल पर राज किया। उन्हें श्रद्धांजलि।

—नीरज कुमार झा
हरिहरपुर, दरभंगा

सार्थक-विमर्श

'सोबती की सोहबत में' अंक पढ़ने को मिला। हिंदी की विशाल समृद्ध परंपरा में कई

दशकों से रचनात्मक ऊर्जा को नई दिशा पर ले जाकर वैविध्यपूर्ण लेखन से अपनी अलग पहचान बनाने वाली लेखिका के बारे में अंक केंद्रित करना सुखद बयार की तरह है। हिंदी कथा-साहित्य में अपनी अनूठी कहन शैली से दस्तक देने वाली वरिष्ठ कथाकार कृष्णा सोबती पर केंद्रित अंक को पढ़ना व समझना हिंदी कथा-साहित्य की उस सशक्त पीढ़ी को समझना है जिनका विविधतापूर्ण लेखन वृहत्तर हिंदुस्तानी समाज व दशकों तक फैले समय को चीन्हना है जिनके लेखन में सार्थक-विमर्श पाठकों की जिज्ञासा का शमन करता है। जहां कंटेंट और शिल्प नई सज-धज के साथ भाषा के अलग मिज़ाज से इस कदर बहुरंगी हो उठती है कि पढ़ते हुए समूचा परिवेश जिंदा हो उठता है। उनके किरदार हमारे आसपास के चलते-फिरते ऐसे जिंदा किरदार हैं जिन्हें हम सालों से देखते-समझते व महसूस करते रहे हैं। उनकी बहुआयामी प्रतिभा को विस्तार से लिखा गया है। अर्चना वर्मा, सविता सिंह और अनामिका के लेखों के अलावा बाकी लेख व जानकारियां भी रोचक व ज्ञानवर्धक लगीं। अंक के संवर्धन में आपका संपादकीय बेजोड़ लगा। हार्दिक बधाई!

—रजनी गुप्त
गोमतीनगर, लखनऊ (उ.प्र.)

अमित छाप

'आजकल' का हिंदी की सुप्रसिद्ध रचनाकार कृष्णा सोबती पर केंद्रित फरवरी अंक प्राप्त हुआ। कृष्णा सोबती के बारे में इतने अच्छे लेखों को एक-साथ पाकर बहुत अच्छा लगा। कृष्णा सोबती, आज़ादी के समय से लेकर अब तक स्त्री-स्वातंत्र्य की सबसे प्रबल रचनाकार रही हैं। उनके उपन्यासों, कहानी के पात्र अपनी जीवटता, जीवन के राग-रस से परिपूर्ण, पाठकों के मन पर अमित छाप छोड़ जाते हैं।

-आशीष कुमार
उन्नाव, उत्तर प्रदेश

कथ्य और संवेदना

'आजकल' पत्रिका का 'युवा कविता के प्रखर स्वर' अंक पढ़ने को मिला। सबसे पहले विमल कुमार का हिंदी कविता के परिदृश्य पर लिखा

लेख 'युवा कविता का परिदृश्य' पढ़ा। इसमें ऐसा कुछ नया इन्होंने नहीं लिखा जो यहां मैं उद्धृत कर सकूँ। बस इस बात के अलावा कि हमारे सभी प्रमुख लेखकों की कालजयी कृतियां उन्होंने तब लिखी थीं जब वे युवा ही थे और उन्होंने कुछ उदाहरण भी दिए। बाद में उन्होंने बस नाम गिनाए हैं। हां, इन्होंने 'समावर्तन' के संपादक कवि निरंजन श्रोत्रिय के युवा कवियों के लिए किए गए प्रयास का उल्लेख भी किया है।

अंक में 'युवा कविता का समकाल' 'समावर्तन' के संपादक निरंजन श्रोत्रिय द्वारा लिखा गया है। इस लेख की विशेषता यह है कि इसमें हमारे समय के लगभग 60 कवियों की कविताओं पर परिचयात्मक और आलोचनात्मक टिप्पणियां हैं जो कि कवि विमल कुमार के लेख (जो सबसे पहले छपा गया है) से कहीं ज्यादा अच्छा और उपयोगी है। इस लेख की सीमा यह है कि यह

'समावर्तन' के संपादक के युवा कवियों के रेखांकित स्तंभ के कवियों तक ही सीमित है फिर भी इसका महत्त्व तो है ही। अब तक के प्रकाशित पांच युवा द्वादश के कवि इस लेख में संदर्भित कवि हैं जिससे यह लेख एक व्यापक फलक तक अपना प्रसार करता है।

एक दूसरा लेख आशीष मिश्र का है '21वीं सदी की स्त्री-कविता'। इस लेख की विशेषता यह है कि यह हमारे समय की प्रतिभाशाली युवा कवयित्रियों को पूरे अधिकारपूर्वक संदर्भित करता है जिनमें ज्योति तिवारी, लीना मल्होत्रा, अनुपम सिंह, जसिता केरकेट्टा और पूनम विश्वकर्मा 'वासम' विशेष काव्य सरोकारों की दृष्टि से विशेष रूप से संदर्भित की गई हैं। कुछ और नामों का उल्लेख भी है जो वास्तव में हमारे समय की कवयित्रियों की समृद्ध सूची है फिर भी कुछ नाम तो छूट ही

रहें हैं लेकिन यहां आशीष मिश्र का उद्देश्य नाम गिनाना नहीं बल्कि काव्यशास्त्रीय जकड़बंदियों को तोड़ती युवा कवयित्रियों की एक बानगी प्रस्तुत करने की है।

कमल किशोर गोयनका का लेख 'महात्मा गांधी : समकालीन विमर्श और प्रेमचंद' एक व्यवस्थित और बढ़िया लेख है जिसमें इन्होंने प्रेमचंद-साहित्य में गांधी का प्रभाव एवं असहमति पर प्रकाश डाला है तो मार्क्सवाद और गांधीवाद की प्रेमचंद के अंतिम दिनों के संदर्भ में एक निर्णय तक पहुंचते हैं। कवियों में सबसे पहले युवा कवि अनुज लुगुन की कविता है। कथ्य और संवेदना के स्तर पर कविताएं ठीक-ठाक हैं लेकिन इन कविताओं में अनुज लुगुन शब्दों की फिजूलखर्ची बहुत करते हैं जिससे कविताएं बेवजह लंबी हो गई हैं। अंक अच्छा लगा।

-गौरव पाण्डेय
गोरखपुर

आजकल का ग्राहक बनें :

मैं आपकी पत्रिका-----का ☐ एक वर्ष (230 रुपये)

☐ दो वर्ष (430 रुपये) ☐ तीन वर्ष (610 रुपये) का ग्राहक बनना चाहता हूँ।

शुल्क का रुपये-----डिमांड ड्राफ्ट

-----दिनांक-----संलग्न है।

हस्ताक्षर-----

नाम

पता

पिन : 000000

● कृपया अपना चंदा डी.डी. अपर महा निदेशक (प्रभारी), प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय के नाम बनाएं।

● पत्रिका भेजने में, चंदा प्राप्त होने के बाद, आठ से दस सप्ताह का समय लगता है। कृपया इतने समय प्रतीक्षा करें।

● दिल्ली से प्रकाशित हमारी अन्य पत्रिकाएं हैं : बाल भारती, आजकल (उर्दू), कुरुक्षेत्र (हिंदी व अंग्रेजी), योजना (हिंदी, अंग्रेजी, उर्दू, पंजाबी व उड़िया)।

चंदा निम्न पते पर भेजें :

उप निदेशक (प्रसार)

प्रकाशन विभाग, कमरा नं. 48-53, सूचना भवन, सीजीओ कॉम्प्लेक्स, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003

राहुल सांकृत्यायन : एक विराट व्यक्तित्व

गुणाकर मुले ने राहुल सांकृत्यायन के जन्मशती वर्ष 1993 में उनके जीवन और कृतित्व से आने वाली पीढ़ियों को अवगत कराने के ध्येय से एक संक्षिप्त पुस्तक की रचना की थी। प्रस्तुत है उसके कुछ अंश...

सितंबर 1937 की बात है। राहुलजी दूसरी बार रूस जाने की तैयारी कर रहे थे और उसी सिलसिले में इलाहाबाद पहुंचे थे। वहां 6 सितंबर को विश्वविद्यालय के छात्रों के सामने उनका भाषण रखा गया। विषय था 'हमारी कमजोरियां।' सभापति थे पं. जवाहरलाल नेहरू।

उन दिनों राहुलजी बौद्ध-भिक्षु के काषाय वस्त्रों में थे। वे तिब्बत की तीन यात्राएं कर चुके थे। इंग्लैंड और यूरोप घूम आए थे। जापान, कोरिया, मंचूरिया, सोवियत संघ और ईरान भी देख चुके थे। तब तक उनकी दो दर्जन से भी ज्यादा पुस्तकें छप चुकी थीं। तिब्बत के बौद्ध मठों में उन्होंने अनेक विलुप्त भारतीय ग्रंथों की खोज की थी। इसलिए विद्वज्जगत में उनका बड़ा सम्मान था।

राहुलजी अपने सामान्य बोल-बरताव में अत्यंत सौम्य और सहृदय थे परंतु पुस्तकों, लेखों और भाषणों में वे अपने विचारों को अत्यंत प्रखर भाषा में व्यक्त किया करते थे, विशेषतः उन दिनों। उनकी 'तुम्हारी क्षय', 'भागो नहीं, दुनिया को बदलो', 'धुमकड़-शास्त्र' जैसी कुछ पुस्तकें इसी कोटि की हैं।

उस दिन विश्वविद्यालय के छात्रों के सामने अपने भाषण में राहुलजी ने उन लोगों की खूब खबर ली जो सारा ज्ञान-विज्ञान पुरानी पोथियों में ही खोजा करते हैं। बोले, - "ज्यादातर पुरानी पोथियों में 75 प्रतिशत तो बेवकूफियां ही बेवकूफियां भरी पड़ी हैं। हां, कहीं-कहीं अकल की बातें भी हैं।"

राहुलजी का भाषण समाप्त होने पर सभापति की हैसियत से नेहरूजी ने बोलना शुरू किया, "आज मैं दो बातें सोच रहा हूँ। पहली, राहुलजी की तरह के चिंतक हमारे विश्वविद्यालयों में क्यों नहीं पैदा होते? दूसरी, यदि मेरे जैसा आदमी यह सब कहता, तो आप कहते कि तुम क्या जानते हो पुरानी किताबों की बातें। मगर आज तो ऐसा आदमी यह सब कह रहा है, जो पुरानी किताबों में ही तैरता रहता है।"

राहुलजी के प्रखर भाषण से कुछ छात्र निश्चय ही तिलमिला गए होंगे। नेहरूजी के भाषण ने आग में घी डालने का काम किया। एक विद्यार्थी बोल ही पड़ा, "तैरते ही रहे हैं, पार नहीं पाया है!"

पंडितजी अपनी प्रत्युत्पन्नमति के लिए प्रसिद्ध रहे हैं। तपाक से जवाब दिया, "हां, जो लोग कुओं में तैरते हैं, वे मेंढकों की तरह इस पार से उस पार भी चले जाते हैं। मगर जो सागर में तैरते ही रहते हैं, वे आर-पार नहीं जाते।"



सचमुच, राहुलजी सतत तैरते ही रहे- एक ज्ञान-सागर से दूसरे ज्ञान-सागर, दूसरे से तीसरे ज्ञान-सागर...। और ये सागर थे संस्कृत और अपभ्रंश के, तिब्बती और जनपदीय बोलियों के, बौद्ध धर्म से संबंधित पालि और संस्कृत साहित्य के, इतिहास और पुरातत्व के, पारिभाषिक में शब्दावली के। अनवरत ज्ञान-साधना करते हुए वे कभी दुर्गम भूखंडों से विचरते रहे, तो कभी जेल की कोठरियों में बंद रहे।

राहुलजी को जीवन में ठहराव बिलकुल पसंद नहीं था। वे अपने विचार बदलते रहे, चोला बदलते रहे, दो बार नाम भी बदले। बुद्ध का यह वचन उन्हें बड़ा प्रिय था, "नौका की तरह पार उतरने के लिए मैंने विचारों को स्वीकार किया, न कि सिर पर उठाए-उठाए फिरने के लिए।" यही वजह है कि वे बड़ी सहजता से बैरागी साधु से आर्यसमाज के प्रचारक बने और फिर बौद्ध-भिक्षु बने। बौद्ध-भिक्षु के वस्त्र त्यागकर गृहस्थ बनने में भी उन्हें कोई कठिनाई नहीं हुई। उसी तरह बौद्ध संस्कृति के प्रति भरपूर श्रद्धा कायम रखते हुए भी वे साम्यवाद के पुरजोर समर्थक रहे।



हजारी प्रसाद द्विवेदी के साथ राहुल सांकृत्यायन

राहुलजी का जीवन यायावरी की एक लंबी महागाथा है। उनका लगभग समूचा जीवन महायात्री का जीवन रहा है। इसीलिए उन्होंने अपनी आत्मकथा को 'मेरी जीवन-यात्रा' का नाम दिया। वस्तुतः राहुलजी के समस्त कृतित्व को, प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से, अनुप्राणित करने वाला प्रमुख तत्व है, उनका धुमकड़ी का जीवन।

राहुलजी स्वयं में एक पूरी संस्था थे, चलता-फिरता विश्वकोश थे। उन्होंने अनेक विषयों पर पुस्तकें लिखीं : इतिहास और पुरातत्व। राजनीति और समाजशास्त्र। दर्शन और विज्ञान। धर्म और संस्कृति। जीवनी और यात्रा-वृत्तांत। आलोचना और साहित्य का इतिहास। स्वयं-शिक्षक और कोश। अनुवाद और संपादन-कार्य....।

राहुलजी के छोटे-बड़े सभी तरह के ग्रंथों की संख्या 140 के आसपास पहुंचती है। राहुलजी के इस बहुआयामी व्यक्तित्व और कृतित्व को जानकर हम विस्मयचकित रह जाते हैं। सोचते हैं- एक व्यक्ति के लिए इतनी सारी यात्राएं, इतना गहन अध्ययन-अन्वेषण और विविध विषयों पर इतना व्यापक लेखन कैसे संभव हुआ? जिसने जैसे-तैसे केवल मिडिल क्लास तक ही नियमित शिक्षा प्राप्त की हो, वह पांडित्य के इतने ऊंचे शिखर पर कैसे पहुंच गया?

समझना ज्यादा कठिन नहीं है। राहुलजी के जीवन में रहस्यमय जैसा कुछ नहीं था। उनमें प्रतिभा थी, तीव्र ज्ञानपिपासा थी और प्रतिकूल

परिस्थितियों में भी अधिक परिश्रम करने की अपूर्व क्षमता थी। खूब तेज़ी से काम करना उन्हें पसंद था। तरुणाई के दिनों में अपनी जीवनचर्या के बारे में वे कभी-कभी कहते भी थे, “मैं सेकंडों का तो नहीं मगर अपने मिनटों का हिसाब अवश्य दे सकता हूँ।”

सत्तर साल की आयु में राहुलजी का देहावसान हुआ। उसके सोलह महीने पहले उन पर ‘स्मृतिलोप’ का आघात हुआ था। प्रकृति के क्रूर प्रहार की उस घटना के दिन तक राहुलजी सक्रिय बने रहे; गंभीर रूप से अस्वस्थ होने के बावजूद लेखन-कार्य में जुटे रहे। अक्सर कहते भी थे, “पुनर्जन्म में मेरा विश्वास नहीं है। मुझे जो कुछ करना है, इसी जन्म में करना है।”

राहुलजी ने 63 साल की आयु तक की अपनी आत्मकथा स्वयं लिखी है। ढाई हजार से भी अधिक पृष्ठों में। मगर वह उनकी ‘जीवन-यात्रा’ है, जिसमें, उन्हीं के शब्दों में कहें तो, उन्होंने “उस जगत की भिन्न-भिन्न गतियों और विचित्रताओं को अंकित करने की कोशिश की है, जिसका अनुमान हमारी तीसरी पीढ़ी बहुत मुश्किल से करेगी।”

आज की उसी तीसरी तरुण पीढ़ी के लिए प्रस्तुत है, राहुलजी का यह परिचय...

एक विराट व्यक्तित्व का परिचय...

एक घुमक्कड़-राज का परिचय...

एक महापंडित के बुद्धिवैभव का परिचय...

जनवरी 1935 की बात है। राहुलजी अपनी दूसरी तिब्बत-यात्रा से वापस लौटे थे, प्रयाग पहुंचे थे और जापान-यात्रा की तैयारी कर रहे थे। एक दिन कलकत्ता की ‘पहली उड़ान’ (1907 ई.) के दिनों के पुराने मित्र महादेवप्रसाद मिल गए। लिखते हैं, “अब उनके चेहरे पर बुढ़ापे का असर था। तरुणाई ने उन्हें भी एक बार कलकत्ता तक छलांग मारने के लिए मजबूर किया था, लेकिन फिर वे हिम्मत हारकर बैठ गए। नून, तेल, लकड़ी की फ़िक्क ने सारे जीवन को ले लिया। मैं छलांगों पर छलांगें मारता ही।”

राहुलजी तब 42 साल के थे, और महादेवप्रसाद उनसे एक-दो साल ही बड़े रहे होंगे। फिर भी दोनों के जीवन में कितना बड़ा अंतर! कुछ ही दिन बाद राहुलजी जापान, कोरिया, मंचूरिया, सोवियत रूस और ईरान की यात्रा पर निकल पड़ते हैं, सचमुच ही छलांगों पर छलांगें मारते जाते हैं। आगे जाकर तिब्बत की दो और यात्राएं करते हैं, जान भी जोखिम में डालते हैं।

नून, तेल, लकड़ी की फ़िक्क से राहुलजी भी नहीं बच पाए, मगर छलांगें मारना उन्होंने नहीं छोड़ा। राहुलजी 1944 में सिर्फ प्राध्यापकी करने के लिए लेनिनग्राद नहीं गए थे। उस रूस-यात्रा का मुख्य उद्देश्य था—महायुद्ध के संकट के दिनों में पत्नी लोला और बेटे ईगोर के साथ रहना। उनके साथ कुछ दिन रहने के बाद वे मध्य-एशिया पहुंचने के लिए छटपटाते रहे। वह संभव नहीं हुआ, तो लेनिनग्राद का सुख-सुविधा का जीवन छोड़कर भारत लौट आए।

भारत में नई गृहस्थी बसाने के बाद भी उन्होंने जब-तब छलांगें लगाना नहीं छोड़ा। पैंसठ साल की आयु में अकेले ही चीन-यात्रा पर गए थे—तिब्बत जाकर खोजकार्य करने के इरादे से। तिब्बत जाना संभव नहीं हुआ, मगर, प्रतिकूल स्वास्थ्य के बावजूद, तुंग-ह्वान तक छलांग लगाकर ही लौटे!

राहुलजी के ‘स्मृतिलोप’ को क्या समझा जाए? क्या वह भी एक लंबी छलांग ही थी—जागृतावस्था से विस्मृतावस्था में? स्मृतिलोप के जो भी कारण बताए जाते हों, मगर राहुलजी को अंतिम दिनों में स्पष्ट आभास हो गया था कि उनकी स्मृति क्षीण होती जा रही है। आनंदजी

को लिखे अपने पत्रों में वे इस बात का जिक्र भी करते हैं।

मधुमेह के मरीज़ थे, हार्ट-अटैक हो चुका था, बीमार होकर ही चीन से लौटे थे, मगर श्रीलंका के विद्यालंकार विश्वविद्यालय में प्राध्यापक नियुक्त होने पर अब आर्थिक चिंता की कोई विशेष बात नहीं थी। फिर क्या वजह थी कि राहुलजी ने वहां रहते घोर परिश्रम किया, स्वास्थ्य की परवाह नहीं की?

समझना कठिन नहीं है। पहली बात तो यही है कि उन्हें मृत्यु का कभी भय नहीं रहा। पुनर्जन्म में बिलकुल विश्वास नहीं था। अक्सर कहते थे, “मुझे जो कुछ करना है, इसी जन्म में करना है।” इसलिए सोचते थे कि, जिन पुस्तकों को लिखने के बारे में सालों से सोचता आ रहा हूँ, जिनके लिए स्रोत-सामग्री जोड़ी है, उन्हें पूरा कर डालूँ, जल्दी से जल्दी।

अपनी पहली तिब्बत-यात्रा (1929-30) के दौरान राहुलजी ने ल्हासा में ‘तिब्बती-संस्कृत कोश’ के करीब 16 हजार शब्द तैयार किए थे। वह कार्य अधूरा रह गया था। उस कार्य को पूरा कर डालने के लिए अपनी चीन-यात्रा (1958) में उन्होंने काफी नई सामग्री जुटाई थी। इसलिए चीन से श्रीलंका पहुंचने पर वे ‘तिब्बती-हिंदी कोष’ को पूरा कर डालने में ज़ोर-शोर से जुट गए।

‘पालि काव्यधारा’ तैयार करने का राहुलजी का संकल्प काफी पुराना था। विद्यालंकार में पालि साहित्य सुविधा से उपलब्ध था। उन्होंने ‘पालि काव्यधारा’ लिख डाली। ‘पालि काव्यधारा’ तैयार करने के साथ-साथ ‘पालि साहित्य का इतिहास’ भी लिख डाला। ‘ऋग्वेदिक आर्य’ लिख चुके थे। ‘दिवोदास’ के नोट तैयार थे, जल्दी में एक छोटा उपन्यास भी लिख डाला।

राहुलजी के जीवन में आलस्य के लिए कोई स्थान नहीं था। वे कठोर परिश्रम के आदी थे। जीवन के अंतिम वर्षों (1959-61) के विद्यालंकार-निवास के दौरान उन्हें विद्यालंकार में ही बिताए वे उन्नीस माह (1927-28) अवश्य ही बार-बार स्मरण आते होंगे जब उन्होंने वहां कठोर परिश्रम करके विद्यार्जन किया था, जब वे अपने हर मिनट का हिसाब देने में समर्थ थे और 1930 में जब उन्होंने वहीं पर ‘बुद्धचर्या’ जैसा ग्रंथ (बड़े आकार के 612 पृष्ठ) कुल 68 दिनों में लिख डाला था!

राहुलजी हर परिस्थिति में लेखन-कार्य करने में समर्थ थे। उन्होंने ‘बाइसवीं सदी’, ‘सिंह सेनापति’, ‘वोल्गा से गंगा’, ‘मानव-समाज’, ‘विश्व की रूपरेखा’, ‘वैज्ञानिक भौतिकवाद’ और ‘दर्शन-दिग्दर्शन’ जैसी अपनी कई पुस्तकें जेल में लिखीं। मजे की बात यह है कि उनकी यही पुस्तकें ज्यादा लोकप्रिय हुईं, और प्रमुखतः यही पुस्तकें अधिक भाषाओं में अनूदित भी हुईं। इसी तरह की राहुलजी की एक और लोकप्रिय पुस्तक है, ‘साम्यवाद ही क्यों?’, जिसे उन्होंने दूसरी तिब्बत-यात्रा के दौरान (1934) धार्मिक सामंतशाही के गढ़ ल्हासा में बैठकर लिखा था। उसी समय ल्हासा में ही उन्होंने ‘विनय पिटक’ का हिंदी में अनुवाद कर डाला। ‘मज्झिम निकाय’ का अनुवाद उन्होंने दूसरी लद्दाख-यात्रा के दौरान किया था।

राहुलजी ने बहुत लिखा—अनेक विधाओं में और अनेक विषयों पर लिखा। बहुतां को ताज्जुब होता है कि इतनी सारी यात्राएं करते हुए वे इतना अधिक लेखन कैसे कर पाए।

वास्तविकता यह है कि अपनी अनेकानेक यात्राओं के कारण ही वे इतना अधिक लिख पाए। पढ़ते भी खूब थे, मगर यात्राओं में अर्जित ज्ञान और अनुभव उनके लेखन के लिए ज्यादा उपयोगी साबित हुए। उनकी करीब बीस पुस्तकें (हिमालय-परिचय माला और यात्रा-विवरण) का सीधा संबंध उनकी यात्राओं से है। उन्होंने देश-विदेश के ऐतिहासिक

स्थानों की बार-बार यात्राएं की, एक पुराविद की गहरी पैठ रखते थे, इसलिए वे 'सिंह सेनापति' 'मधुर स्वप्न', 'विस्मृत यात्री' और 'जय यौधेय' जैसे ऐतिहासिक उपन्यास सफलतापूर्वक लिख पाए। तिब्बत की चार यात्राएं करके प्राचीन भारतीय वाङ्मय के जिन विलुप्त रत्नों की उन्होंने खोज की वह भारतीय संस्कृति को उनकी महान देन है।

यात्राओं से उन्हें बल मिलता था, स्फूर्ति मिलती थी। वे शौकिया यायावर नहीं थे। उनकी यात्राएं सोद्देश्य होती थीं। बीसवीं सदी में शायद ही किसी अन्य भारतीय ने इतनी विस्तृत यात्राएं की हों और इतना अधिक यात्रा-साहित्य लिखा हो। घुमक्कड़ी उनमें कूट-कूटकर भरी हुई थी, उनके जीवन का अभिन्न अंग थी। प्रमुखतः घुमक्कड़ी ने ही उनके विचारों को व्यापक बनाया, उन्हें महापंडित बनाया। राहुलजी को घुमक्कड़ी का जीवन इतना अधिक प्रिय था कि उन्होंने एक नया 'घुमक्कड़-शास्त्र' ही रच डाला।

राहुलजी ने लगभग समूचे एशिया को पादाक्रांत किया। इंग्लैंड और यूरोप के कुछ देशों की भी यात्रा की मगर अमरीका जाने की उनकी कभी इच्छा नहीं हुई, हालांकि 1932 में जब वे इंग्लैंड में थे तो उनसे अमरीका जाने का अनुरोध भी किया गया था।

इतनी सारी यात्राएं करने पर भी एक महत्वपूर्ण यात्रा का राहुलजी का सपना पूरा नहीं हुआ। वह सपना था, मुख्य मध्य-एशिया की यात्रा। तिब्बत की प्रथम यात्रा के भी काफी पहले 1926 में राहुलजी जब लद्दाख पहुंचे थे, तो चीनी तुर्किस्तान के काशगर, यारकंद, खोतन आदि स्थानों की यात्रा करने की उनकी बड़ी इच्छा हुई थी। यात्रा का प्रबंध भी हो गया था परंतु पासपोर्ट मिलना संभव नहीं था।

राहुलजी जब लेनिनग्राद में थे, 1945-47 में, तब भी उन्होंने सोवियत मध्य-एशिया की यात्रा के लिए खूब कोशिश की थी, किंतु सोवियत शासन ने अनुमति नहीं दी। राहुलजी 1958 में चीन की यात्रा पर गए, तभी वे बड़ी मुश्किल से तुंग-ह्वान तक जा पाए और इस प्रकार चीनी तुर्किस्तान के पूर्वी छोर के दर्शन करके आए।

राहुलजी ने दो बड़ी जिल्लों में मध्य-एशिया का विस्तृत इतिहास प्रस्तुत कर दिया, मगर मध्य-एशिया की मर्मस्थली को वे प्रत्यक्ष नहीं देख पाए, इसका उन्हें निश्चय ही बहुत अफसोस रहा होगा।

राहुलजी की यात्राएं पैसों के बल पर नहीं होती थीं। वस्तुतः 1948 तक रुपयों-पैसों की उन्होंने कोई विशेष चिंता भी नहीं की। श्रीलंका के विद्यालंकार विहार अध्यापक बनकर गए (1927), तो बोले मुझे कोई वेतन नहीं चाहिए। भोजन, निवास, पढ़ाई और पुस्तकों की व्यवस्था होनी चाहिए बस।

राहुलजी तिब्बत से हस्तलिपियों, चित्रपटों आदि के रूप में ऐसी चीजें लाए थे जिन्हें बेचकर वे लाखों रुपये कमा सकते थे। नालंदा में एक विद्यापीठ की स्थापना के लिए कुछ चित्रपट बेच देने का उन्होंने निश्चय भी किया था परंतु जब उन्हें उन चित्रपटों का वास्तविक महत्व स्पष्ट हो गया, तो उन्होंने उन्हें पटना संग्रहालय को सौंप दिया। राहुलजी ने पुरातात्विक महत्व की वस्तुएं अपने पास न रखकर विभिन्न संग्रहालयों को सौंप दीं।

राहुलजी धन या सुख-सुविधाओं के मोह में कभी नहीं फंसे। परसा और तिरुमिशी के मठों का सुख-सुविधाओं का जीवन उन्हें एक खूंट से बांधकर नहीं रख सका। जब वे लेनिनग्राद विश्वविद्यालय में प्राध्यापक थे (1945-47), तो आखिरी दिनों में पैसों की बाढ़-सी आ गई थी, मगर राहुलजी उसमें बहने के लिए वहां नहीं रुके, स्वदेश वापस लौटे।

राहुलजी पैसों के मामले में बड़े स्वाभिमानी थे। उन्होंने सम्मेलन का परिभाषा-निर्माण का काम किया, समिति की साहित्य-योजना का

काम किया, किंतु इन दोनों संस्थाओं से कोई वेतन नहीं लिया।

राहुलजी ने कोई पाठ्य-पुस्तक नहीं लिखी। महज पैसों के लिए, अपनी पुस्तकों में कोई परिवर्तन करना या पुरस्कार के लिए अपनी पुस्तक कहीं भेजना उन्हें कतई पसंद नहीं था। उनकी पहली प्रमुख पुस्तक 'बुद्धचर्या' जब प्रेस में दी गई तो उसके लिए पैसों की जरूरत पड़ी। आचार्य नरेंद्रदेव ने बाबू शिवप्रसाद गुप्त से सिफारिश की। शिवप्रसादजी ने डा. भगवानदास राय को देने के लिए कहा। भगवानदासजी की राय रही कि ग्रंथ को शब्दानुवाद के रूप में न रखकर पुराणों की तरह स्वतंत्र ग्रंथ के रूप में प्रस्तुत किया जाए। राहुलजी लिखते हैं- "ऐतिहासिक दृष्टि और ईमानदारी मुझ में अब काफी थी, इसलिए उनकी बात का मुझ पर असर क्या पड़ता? मैंने 'बुद्धचर्या' के रूप में बुद्ध और बुद्धकालीन भारत के इतिहास की सामग्री मौलिक रूप में रखनी चाही थी, बाबू भगवानदास की बात मानने से उस पुस्तक को आग में डाल देना मैं पसंद करता।"

इसी तरह के एक अन्य प्रसंग की जानकारी आनंदजी ने दी है। जेल (1942) में लिखे गए 'दर्शन-दिग्दर्शन' ग्रंथ की पांडुलिपि आनंदजी के पास थी। वे उसके प्रकाशन की कोशिश में जुटे हुए थे। बंगाल की एक हिंदी प्रेमी संस्था ने पांडुलिपियों पर पुरस्कार देने की एक योजना बनाई थी। आनंदजी ने सोचा कि यदि पुरस्कार मिल जाता है तो पुस्तक को छपवाने में सुविधा होगी। उन्होंने इस संबंध में राहुलजी का लिखा उत्तर मिला :

"प्रिय आनंदजी,

रुप के मूल्य को मैं भी समझता हूं किंतु मेरी पांडुलिपि कहीं पुरस्कृत होने के लिए न भेजना।"

आनंदजी की टिप्पणी है- "राहुलजी ने अपनी किसी कृति को उसी तराजू पर न चढ़ने दिया, जिसके दूसरे पलड़े में कोई छोटी या बड़ी थैली रखी हो।"

राहुलजी ने रूस से लौटने के बाद दो साल के अंदर ही नई 'गृहस्थी' बसाई, तब से उन्हें आर्थिक चिंता सताने लगी। तब से अपनी आर्थिक चिंता का वे बार-बार जिक्र करते हैं। बेटी व बेटे के जन्म के बाद तो वे और भी ज्यादा चिंतित रहने लगे। इसमें संदेह नहीं कि उनके जीवन के अंतिम करीब दस साल परिवार के आर्थिक भविष्य की सुरक्षा की चिंता में गुजरे।

राहुलजी ने राजनीति में भी जमकर भाग लिया, 1921 से 1944 तक, बीच के कुछ सालों के अंतराल को छोड़कर। लेखन और अनुसंधान-कार्य को अपनाने के पहले ही वे राजनीति में प्रवेश कर चुके थे। राजनैतिक कार्य करने में, किसानों-मजदूरों के लिए संघर्ष करने में उन्हें बड़ा सुख मिलता था। 1930 की बात है। राहुलजी अपनी प्रथम तिब्बत-यात्रा से श्रीलंका लौटकर भिक्षु बन गए थे। भारत में चल रहे सत्याग्रह के आंदोलन से अलग रहना उन्हें असह्य लग रहा था। आनंदजी के कमरे में पहुंचकर बोले, "भारत में यज्ञ हो रहा है। उसमें समिधाओं की कमी न रहनी चाहिए।" दोनों ने भारत लौटने की योजना बनाई।

राहुलजी तीसरे दशक के मध्य में ही बिहार के एक चोटी के नेता के रूप में उभर चुके थे, अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य भी चुने गए थे। अनुसंधान-कार्य में जुट जाने पर भी राजनैतिक कार्य करने की लालसा उनमें बराबर बनी रही। अपनी पहली तिब्बत-यात्रा से कलकत्ता वापस लौटे, तो लिखते हैं, "बड़ा बाजार में सत्याग्रहियों पर लाठी पड़ते देखी। मेरा दिल बहुत ललचाने लगा, लेकिन मैं इक्कीस खच्चरों पर ग्रंथराशि तिब्बत से जमा करके लाया था। जब तक उन्हें सीलोन नहीं पहुंचा देता, तब तक मैंने अपने लालच को दबाना ही पसंद

पृष्ठ 17 पर जारी

‘वोल्गा से गंगा’ इतिहास की समीचीन समझ

महेश दर्पण

इतिहास-कथा की दृष्टि से ‘वोल्गा से गंगा’ की सर्वाधिक प्राचीन कहानी है 6000 ई.पू. की ‘निशा’। हिंदी-यूरोपीय जाति की वोल्गा के ऊपरी तट क्षेत्र के लोगों की जिंदगी का अध्ययन इस कथा में राहुल सांकृत्यायन ने किया है। इस क्षेत्र का प्राकृतिक सौंदर्य, वनस्पतियाँ, हिमवसना धरती और जन-जीवन ऐसी मातृसत्ता में चलता दीखता है कि संतान के लिए यह समझ पाना कठिन हो जाता है कि उसका पिता कौन है! यह ऐसी समाज-व्यवस्था है जहाँ कबीले के भाई या बेटा ही आगे चलकर पति की भूमिका निभाने लगते हैं। लकड़ी, पत्थर, हड्डी के हथियारों का प्रयोग आत्मरक्षा या आक्रमण के लिए करने वाला यह कबीला निशा-परिवार कहलाता है क्योंकि इसकी मुखिया निशा है। वह घर के भीतर और बाहर नेतृत्व संभालती है।

राहुलजी का कुशल कलाकार उस समय के शिकार, भोजन, स्त्री-पुरुषों के स्वतंत्र और वन में सचेत विवरण की ऐसी सूक्ष्म डीटेल्स देता है कि मनुष्य ही नहीं, पशुओं के जीवन का भी वह यथार्थ चित्रण-सा लगने लगता है। यह वह समय है जहाँ वस्त्रों का उपयोग नहीं के बराबर होता है। वन से लौटकर चमड़े की पोशाक उतार दी जाती है। स्त्री हो या पुरुष, घर के भीतर कोई वस्त्र नहीं।

जीवन बचाने के लिए, यह जीवन लेने को ही धर्म स्वीकारने का समय है। मृत्यु एक यथार्थ है, जिसके लिए कोई विलाप नहीं। प्रकृति लील जाए, चाहे भेड़िए खा जाएं। सत्ता की ईर्ष्या का प्रारंभिक भाव यहाँ निशा में नजर आता है। वह जानती है कि आगामी राज्य-सत्ता उसकी बेटी लेखा की होगी। जिसके पास सत्ता होगी, सभी उसके प्रणय-पात्र बनना चाहेंगे। कथांत में अपनी ही बेटी को समाप्त कर देने के उपक्रम में स्वयं निशा भी जान से हाथ धो बैठती है। माँ-बेटा वोल्गा की भेंट चढ़ जाती हैं। कथा कहती है कि कबीले की सत्ता चलाने के लिए बलिष्ठ होना अनिवार्य है। इसीलिए अब रोचना बनती है मुखिया। राहुलजी के अनुसार सन् 1942 के समय यह 361 पीढ़ी पूर्व की कथा है। इस समय हिंद, ईरान व यूरोप की सभी जातियाँ एक कबीले के रूप में रह रही थीं। इसे मानव-सभ्यता का आरंभिक काल कह सकते हैं।



दूसरी कहानी लगभग 2500 वर्ष बाद की अर्थात् 3500 ई. पूर्व की है। यह वह काल है जब भारत, ईरान, रूस की श्वेत जातियों की एक ही जाति थी हिंदी-स्लाव जाति। वोल्गा के मध्य तट पर निवास करने वाली जाति के दिवा और सूरश्रवा के मिलन व शृंगार दृश्यों-संवादों में सरस कथा आती है। एक माँ से जन्मे और बचपन से साथ रहते आए होने के बावजूद इनमें विपरीतलिंगी के प्रति सहज आकर्षण है। दिवा

मुखर है और सूर शांत। इनका व्यवहार बताता है कि यह उन्मुक्त जीवन और संबंधों का समय है किंतु व्यवस्था अभी निशा-काल की ही चली आ रही है। समस्त जन एक छत के नीचे रहता है। यह सब पुरा काल की एक ही स्त्री की संतति हैं। इनकी एक ही नायिका है। अंतर केवल यह आ गया है कि एक जन समिति बन चुकी है। वह शिकार, प्रेम, नृत्य, गृह निर्माण, चमड़े का परिधान बनाने आदि के बारे में ही नहीं, जीवन के हर क्षेत्र के लिए नियम बनाती है। यहाँ व्यक्ति का जन से अलग कोई अधिकार नहीं है। कहानी में क्षेत्र-विशेष की खूबियाँ भी जाहिर होती चली हैं। अग्नि की प्रार्थना करने वाले इस कबीले में अंतर केवल यह आया है कि यह अब एक जीवित माता का राज्य नहीं बल्कि अनेक जीवित माताओं का राज्य है। इसका संचालन जन-समिति करती है। अतः भय अब किसी माता को नहीं। अब कोई निशा अपनी बेटा को वोल्गा में डुबाना नहीं चाहती।

परिवर्तन यह भी है कि अस्वामिक वनों में ही नहीं, निशा-जन, उषा-जन के क्षेत्र में जाकर भी शिकार कर आते हैं। यह फिर दो कबीलों की लड़ाई का कारण बनता है। निशा-जन के अन्याय से लड़ते-लड़ते उषा-जन के सभी सदस्य मारे जाते हैं। लड़ना अनिवार्य था क्योंकि खून का बदला खून से लेना ही जन का धर्म माना जाता था। विशेषता यह थी कि इस समय तक झूठ का अवतरण मानव समाज में नहीं हुआ था।

युद्ध के वीभत्स दृश्यों के बीच यहाँ किसी भी तरह शत्रु के प्राण लेना जायज़ है। विजयोन्माद-मत्त माता है, और वसु को उस दिन विशेष में मिला उसका प्रेम है। उषा-जन के समाप्त होते ही पहली बार प्रेत-प्रसंग आता है। अब रात के समय उषा क्षेत्र से नहीं गुजरते निशा-जन के लोग।





सूर्यकांत त्रिपाठी निराला के साथ राहुल सांकृत्यायन

यह शिकार के नव्यतम तरीकों के अन्वेषण का समय है। कुरु-जन की कन्या से मिल ऋक्षश्रवा प्रेमानुराग में बंध जाता है, किंतु वह उस शत्रु कबीले से है जो निशा-जन से बचकर वोल्गा तट को छोड़ कर दूर चले जाने की सोच रहा है। बर्बर धर्म के पालन के अनिवार्य होते हुए भी वह लड़ना नहीं चाहता।

इस पुस्तक की प्रथम पांच कहानियाँ 'निशा', 'दिवा', 'अमृताश्व', 'पुरुहुत' और 'पुरुथान' का समय 6000 ई.पू. से 2000 ई.पू. तक का है। इन्हें पढ़ते हुए यथार्थ और कल्पना पर सचेत ढंग से सोचना कठिन इसलिए हो जाता है कि महापंडित राहुल सांकृत्यायन का गहन अध्ययन वहाँ पूरी संलग्नता से सक्रिय रहा है। उनका भाषा शास्त्रीय और समाज शास्त्रीय ज्ञान इन कहानियों को प्रामाणिक आकार देता है।

'अमृताश्व' कथा है 3000 ई.पू. की हिंदी-ईरानी जाति की मध्य एशिया, पामीर की। यहाँ फर्गाना का सौंदर्य है। ऋक्षाश्व और सोमा के मधुर संवादों में कथा खुलती है। अमृताश्व का प्रसंग आता है। संकेत आता है कि कहीं वह ऋक्षाश्व का ही पुत्र तो नहीं! पति कृच्छाश्व के सामने ही सोमा सोम-पान करती है। यह उस काल की कथा है जब स्त्री ने पति की संपत्ति होना स्वीकार नहीं किया था। उसे अस्थायी प्रेमी बनाने का अधिकार था किंतु अतिथियों-मित्रों के पास स्वागतार्थ पत्नी को भेजने का रिवाज भी था। अनेक जनपदों में स्त्रियों की लूट-पाट नहीं होती थी। सारे घर के पुरुष पिता कहलाते थे। पशु-पालन होने लगा था और स्त्रियाँ शिकार पर जाया करती थीं।

समय-विशेष की विशेषताओं की यह इतिहास-कथा अमृताश्व-मधुरा की संवादों में निकटता और प्रेम के साथ ही मधुरा के पक्थों के ग्राम पहुँचा देती है। मधुरा के पिता बेटों के प्रेम संबंध को

स्वीकार कर लेते हैं। यह प्रेम का सम्मान है। यही अमृताश्व फिर कुरु ग्राम का महापितर बनता है। अपने यहाँ की परंपरा के विरुद्ध जाकर भी अमृताश्व मधुरा को स्वतंत्रता देता है। यहाँ कुरु समाज में परिवर्तन की आहटें सुनाई दे रही हैं। इस कबीले ने शिकार करते हुए ही कुछ पशु एकत्र कर लिए हैं। अब मांस, दूध, चमड़े के अतिरिक्त ऊन भी मिलने लगा है। यही नहीं, कुरुआनियाँ सूत भी कातने लगी हैं। बस, अब राज्य स्त्री का नहीं, पुरुष का हो गया है। लड़का शासक है—महापितर।

पुरु जब इस कबीले के पशुओं को हांक ले जाते हैं तो मधुरा से यह सूचना पाकर अमृताश्व विपरीत स्थितियों में भी युद्ध की योजना बनाता है। परिस्थितियाँ विपरीत इसलिए हैं कि कुरु जन नशे में धुत पड़े हैं। ऐसे में वह कुरुआनियों को युद्ध की आज्ञा देता है। यह एक तरह से पुरातन परंपरा की वापसी का संकेत है।

अधिकांश पुरु मारे जाते हैं और स्त्रियों को विजेता अपने साथ ले आते हैं। महापितर के आदेश से अब एकाधिक पत्नी रखने की परंपरा चल निकलती है। यहाँ से आधिपत्य का समय शुरू हो जाता है।

वधु-उपत्यका की हिंदी-ईरानी जाति की 2500 ई.पू. की कहानी है 'पुरुहुत'। रचनाकाल से 180 पीढ़ी पूर्व की इस कथा में आर्यजनों का और अधिक विकसित रूप सामने है। इस समय तक खेती होने लगी है। तांबे से बने बर्तन व हथियार काम आने लगे थे। बांसुरी सरीखा वाद्य पहली बार सामने है और द्राक्षा सुरा भी इस कबीले के जनों में कुछ भारत की ओर प्रस्थान करने को आतुर थे। सात हजार फुट ऊँची यह पर्वत उपत्यका तज्जकिस्तान स्थित थी। शीत यहाँ हर समय छाई रहती। प्रयोग में आने वाली चीजों का स्वरूप अधिक विकसित है। पुरुहुत व शेचना माद्री की भेंट यहाँ कथा को सरस बनाती है। दोनों को डांडे पर

ही जाना है। युवती यहाँ सत्तू, फल, नमक और दाना पहुँचाने जा रही है। युवक के साथ है भेड़ों का रेवड़। युवती का परदा पुरानी सोच का प्रतिनिधि है। वह मानता है कि मनुष्य एक जगह बंधकर रहने के लिए नहीं। इसीलिए उसे गाँव जाना नहीं सुहाता। ताँबे और खेत देख कुढ़ जाता है। उसकी मान्यता है कि इनके आने से वक्षु तट पर पाप बढ़ गया है। अब पत्थर की कुल्हाड़ी से लकड़ी नहीं काटी जाती। अरणी को रगड़कर आग पैदा कर ली जाती है।

विकास-विरोधी परदा प्रकृति के मूल रूप को नष्ट करने से रुष्ट है। उधार विकास के अपने तर्क हैं जिनमें आधा भोजन धन्य माना जाता है। खान-पान में ही नहीं, रहन-सहन में भी परिवर्तन आया है। सोने-चांदी के आभूषण आ गए हैं, दास-प्रथा चल निकली है। मनुष्य खरीदे और बेचे जा रहे हैं किंतु संघर्ष भी बढ़ा है। नीचे वाले मद्र और पर्शु ऊपर वाले पुरुओं-मद्रों को दबाने में लगे हैं। वस्तुओं की उपलब्धता संघर्ष का कारण बनती है। ऊपर वालों में एकजुटता और वीरता-बुद्धिमत्ता के कारण पुरतूत पहला इंद्र बन जाता है। लोहे का काम जानने के कारण वह नए लौह हथियार बनवाता है। उसकी युक्तियों से पर्शु और निचले मद्र परास्त हो जाते हैं। पराजित कबीले की स्त्रियाँ अपने कबीले में शामिल कर लेने वाले इस समाज में महापितर की प्रधानता स्थापित हो जाती है। अब जन स्वतंत्र होकर नहीं रहना चाहते। कई जनों का एक सेनापति बनता है—इंद्र।

‘पुरुधान’ के साथ राहुलजी हिंदी-आर्य जाति की कथा को विषय बनाते हैं। ऊपरी स्वात की यह कथा 2000 ई.पू. की है। सुंदर घरों वाले इस प्रदेश में आर्य इंद्र-पूजा की तैयारी में लगे हैं। असुरों से खरीदारी के संकेत मिलते हैं। असुरों की खराबियों में मनुष्यों का खरीदना-बेचना भी शामिल है। इंद्र-पूजा में स्वात नदी के दूसरे तटों से भी मद्र आ रहे हैं। युवक-युवतियों के लिए यह एक उन्मुक्त उत्सव है। स्त्री तो यूँ भी इस समाज की दबने वाली नहीं है। इंद्र को बलि चढ़ाई जाती है। घोड़े की बलि का यज्ञशेष बांटा जाता है।

इन पहाड़ियों से कहीं अधिक चतुर हैं असुर नागरिक। वे आर्यों को पशु-मानव मानते हैं। उधर आर्य मानते हैं कि असुरों का हाथ लग जाने से स्वात का पानी कलुषित हो गया है। वास्तव में यह दो संस्कृतियों का द्वंद्व है। जहाँ असुर सामंत महज भोग-विलास में डूबे रहते हैं, उनके पास सैकड़ों स्त्री दासियाँ हैं, वहीं पुरुधान आर्य समाज का कुशल नेतृत्व कर उसे विकास के मार्ग पर ले जाता है। उसकी पत्नी उषा बन जाती है क्योंकि उसके पति सुमेध का निधन हो गया है। पुरुधान उसका चचेरा भाई है। उसके प्रति उषा के आकर्षण का संकेत कथारंभ में ही मिल चुका है।

पुरुधान, असुर-भट आक्रमण का सामना अपने विवेक व वीरता से करता है। यह प्रथम असुर दुर्ग का पतन है। असुर नागरिकों को सरेआम अंग-भंग कर मार दिया जाता है। इसे देवासुर संग्राम का एक रूप भी माना गया। इस युद्ध का परिणाम यह हुआ कि आर्यों ने असुरों के पण्य लेने बंद कर दिए किंतु ताँबे और पीतल का बहिष्कार वे कितने समय कर पाते! वस्तुतः वे उनकी ज़रूरत बन चुके हैं।

गंधार में 1800 ई.पू. हिंदी-आर्य जाति की कहानी ‘अंगिरा’। यह तक्षशिला के तेज पानी और हवा के बीच दो तरुणों के संवाद से शुरू होती है। दोनों गंधार जा रहे हैं। पाल भद्र और वरुण सौवर। समाचार मिलता है दक्खिन में असुर जब भी आर्यों से लड़ रहे हैं। माघवा इंद्र सौ नगर दुर्ग तोड़ चुका है। इनकी मजबूती के कारण इन्हें लौह दुर्ग कहा जाता था। असुरों के राजा शंबर की कथाएँ भी आती हैं, किंतु आर्यों की विजय का कारण है उनके अश्व। यह वह समय है जब आर्यों के बीच इंद्र परंपरा समाप्त हो चली है। आर्यों में जब जन-परिषद

ही सर्वोच्च है। असुरों में अब भी इंद्र प्रथा चल रही है। वहाँ राजा का दैवी सिद्धांत ही चला आ रहा है।

राहुल सांकृत्यायन यहाँ सभ्यता-समीक्षा करते चलते हैं। संवादों में सच खुलता है कि असुरों के बाज़ार नगर, स्थापत्य आदि उच्चकोटि के हैं। सागर में उनकी निर्भीक यात्रा और संकेत भाषा से संवाद उनकी विशेषता है। वीर उनमें हैं, किंतु अधिक नहीं। दास-दासियों से दुर्व्यवहार उनकी आदत है। उनके हथियार, रथ, कवच, गदा, शक्ति से आर्यों ने बहुत कुछ सीखा और अपनाया है। अब बस सागर-नौ चालन सीखना शेष है। ‘सीखें या न सीखें, उनसे लें या न लें’ पर विवाद-संवाद चल रहा है। सच यह है कि असुर संसर्ग से आर्यों में बुराइयों का समावेश भी हुआ है। बस अश्व कला है, जिसमें आर्य श्रेष्ठ हैं। ऋषि अंगिरा आर्य शुद्धता के पक्षधर हैं। यह मौखिक अध्यापन का समय है। लेखनी व भुर्जपत्र का प्रयोग अभी दूर है। सारे गंधार में सबसे बड़ा अश्वस्थ अंगिरा का ही है। नवीन त्याज्य और सारा प्राचीन ग्राह्य है, यह वह सही नहीं मानते किंतु दास-प्रथा और वर्ण संकरत्व के वह विरुद्ध हैं। झुकाव उनका आर्यों की पुरातन-परंपरा पर ही है।

वरुण-सुमित्र संघर्ष में सुमित्र की पराजय होती है। वरुण ऋषि अंगिरा से प्रभावित है। असुरों के प्रभाव से बचने के लिए उसने अलग आर्यपुर बसा लिया है। यहाँ इतिहास का आधिक्य कथा-रस को कहीं-कहीं भंग भी करता है, यह जिज्ञासा तो बनी ही रहती है कि फिर क्या हुआ?

कुरु पंचाल की वैदिक आर्य जाति की 1500 ई.पू. की कथा है ‘सुदास’। रचनाकाल से 144 पीढ़ी पूर्व की इस कथा के समय विश्वामित्र, वशिष्ठ, भारद्वाज ऋग्वेद के मंत्रों की रचना कर रहे थे। यही वह समय था जब कुरु पंचाल के आर्य सामंतों में जनता को उसके अधिकार से वंचित कर दिया था। अन्य कहानियों की तरह यहाँ भी मार्ग में एक पान्थ को एक तरुणी मिलती है। यह भेंट प्रेम-व्यवहार में परिवर्तित होते-होते यह पता चल जाता है कि युवक को काम चाहिए। वह खेती व पशु-पालन कर सकता है। भूखे होने के कारण वह अशक्त है। अपने पिता माद्र से मिलकर तरुणी अपाला, सुदास को काम दिला देती है। यह एक प्रवासी मजदूर की कथा है जो अपाला के प्रेम में पड़ गया है। माद्र के विचार में पंचाल पुर अर्थात् अहिच्छत्र में मानव नहीं बसते, वे दैन्य युक्त हैं। वहाँ मानव का कोई मूल्य नहीं। यह पाया जाता है शतद्रुपार आकर मद्र-भूमि में। यहाँ स्वाभिमान व आनंद से जीते मनुष्य हैं। माद्र तो सुदास के पिता का भी मज़ाक ही उड़ाता है। दिवोदास के आमजन गिड़गिड़ाते जो हैं। वह उन्हें आर्यभिन कहता है। यही हैं असुर। राजा व पुरोहितों की मिली-भगत से पंचाल में जन्म लेता है भेद-भाव।

प्रेमकथा की उठान में अपाला-सुदास निकट आते हैं। यहाँ प्रेम-दृश्य सहज और आकर्षक हैं। अपाला सदा के लिए सुदास की हो जाने को आतुर है किंतु शर्त यह है कि सुदास पंचाल से मुंह मोड़ ले। सुदास जब ऐसा नहीं कर पाता और माँ के वचन से बंधा होने की बात करता है, तो अपाला उसकी प्रतीक्षा करते रहने का वचन देती है। कथा में मोड़ तब आता है जब पिता सुदास को राजा बनाना चाहता है। सुदास राज्य को, जन को लौटा देने के पक्ष में है। इस परिवेश में सुदास खुश भी नहीं है। उसे अपने मुक्त व स्वतंत्र दिन याद आते हैं। उधर स्थिति यह है कि उसे अपने प्रभाव में लेने के लिए पुरोहित-ऋषि ही नहीं, अनेक सामंत भी अपनी युवा पुत्रियाँ-तरुणियाँ उसके पास भेजते किंतु सुदास को इससे कोई मतलब न था। उसे तो ऋषियों की चाटुकारिताभरी स्तुतियाँ भी छल ही प्रतीत होती थीं। ऐसी स्तुतियों के कुछ रूप ऋग्वेद में विद्यमान हैं। लंबे समय बाद, माँ के निधन उपरांत सुदास अपनी

प्रेयसी अपाला से मिलने मद्रपुर अर्थात् स्यालकोट पहुंचता है तो न वह जीवित बची है न उसके पिता। दुखद अंत की यह कहानी इतिहास को पढ़ने की एक विवेकशील आंख जरूर देती है।

पंचाल की ही 700 ई.पू. की कथा है 'प्रवाहण'। यहां कथानायक है प्रवाहण और लोपा उसकी बाल सखी। वह उसकी प्रेयसी भी है और मामा की बेटा भी। यह प्रेम मतभेद रहते हुए भी गहरा है बल्कि मतभेद प्रेम को पुष्ट करता है। लोपा गार्म्य ब्राह्मण महाशाल के प्रासाद में इसलिए प्रसन्न नहीं है कि उसे दास-दासियों की स्थिति देखकर कष्ट होता है। पंचाल राज-पुत्र के साथ राजमहल में आकर तो वह और भी दुखी हो जाती है। यहां स्थिति यह है कि बस वे दो ही अ-दास हैं। उसके प्रिय प्रवाहण का हाल यह है कि वह मानव बनने से भी अधिक विश्वास योग्य बनने में रखता है। उसकी मान्यता है कि वह राज्य करने के लिए ही पैदा किया गया है। वह ऋषि, इंद्र, अग्नि, वरुण के नाम पर जन को राजाज्ञा मानने की व्यवस्था को समीचीन मानता है। उसके पक्ष को मिलने वाली सुविधाएं व विलास दैव-कृपा हैं। उसका यह विश्वास लोपा के साथ संवाद में खुलता है। वह मानता है कि राजभोग हाथ में रखने के लिए संदेह पैदा करने वालों की बुद्धि को कुंठित कर दिया जाना आवश्यक है। देवताओं व उनकी यज्ञ-पूजा के प्रति संदेह पैदा करने वाले भीषण शत्रु हैं। इस समय आर्यों ने कृष्ण लौह के हथियार बनाने शुरू कर दिए थे।

लोपा संवाद में तर्क करती है। वह प्रवाहण की बात को झूठ-फरेब मानती है। फिर भी प्रवाहण उसे उस साधन के बारे में बताता है जिससे ब्राह्मण और क्षत्रिय लंबे समय तक ऐश्वर्य भोग करते रहेंगे। यहां आती है पुनर्जन्म की अवधारणा कि जो हो रहा है, उसमें पूर्वजन्म का योग है। इस छल में वह ब्राह्मणों से भी आगे की सोचता है। उसे अपने भोग के लिए सैकड़ों को भाड़ में झोंक देने से परहेज नहीं।

कथांत में प्रवाहण के निधन के बाद भी उसके बनाए साधन चल रहे हैं। कुरु पंचाल में याज्ञवल्क्य कई परिषदों में विजयी हुआ। गार्गी को भी उसने धोखे से परास्त किया। गार्गी इसे भूली नहीं। लोपा के जीवन के उत्तरार्ध में वह पंचालपुर आई। वह लोपा के पितृ कुल से है, बताती है कि उसे छल से परास्त किया गया क्योंकि याज्ञवल्क्य ही था जो प्रवाहण के मिथ्यावाद को पूर्णता तक ले गया। गार्गी यह भेद खोलती है कि कैसे ब्राह्मणवाद राजसत्ता और ब्राह्मण सत्ता का पोषक बना हुआ है। कहानी अंत में इस वंचना से घृणा की प्रेरणा देती है। सच पूछें तो राहुलजी यहां अपने तरीके से राजा के दैवी सिद्धांत की आलोचना करते हैं।

'बंधुल मल्ल' है 490 ई.पू. की एक कथा जो मल्लिका व बंधुल के संवाद से प्रारंभ होती है। यहां स्त्री-पुरुष एक साथ शिकार को जा रहे हैं। शिकार और उसके बाद के खुशनुमा उत्सव के बाद यह प्रसंग संपन्न होता है। दूसरे खंड में आता है कुसीनारा का संस्थागार अर्थात् संसद और गणपति की घोषणा जिसमें बंधुल को उपसेनापति बनाने का प्रस्ताव आता है किंतु जनतांत्रिक स्वर कहता है कि बंधुल की परीक्षा ली जाए। वह सात खूंटों को एक सांस में तलवार से काट भी डालता, यदि उसके साथ छल न किया जाता। छल पकड़ते ही बंधुल कुसीनारा से मल्लिका के साथ निकल कर कोसल राज प्रसेनजित के पास आ पहुंचता है। उसने कभी अपने इस सहपाठी से कहा था कि मैं राजा बनूंगा तो तुझे सेनापति बनना होगा।

प्रसेनजित से वह इतना अधिकार अपने लिए अवश्य ले लेता है कि मल्लों के विरोध की स्थिति में उसे अपना पक्ष चुनने की स्वतंत्रता रहेगी। बस, बंधुल कोसल का सेनापति बन जाता है। गर्भवती मल्लिका अभिषेक पुष्करिणी में स्नान की इच्छा जताती है। वहां जीवन में एक

ही बार किसी लिच्छवी पुत्र को स्नान का अधिकार है। रक्षकों की बाधा को पार कर बंधुल मल्लिका को स्नान कराकर भाग निकलता है। गर्वीले लिच्छवी उसका पीछा करते हैं, तो एक ही तीर से बंधुल 500 रथियों को बेध डालता है।

इस कथा में अब जंबूद्वीप के सबसे बड़े नगर श्रावस्ती का संदर्भ आता है। यह वह समय है जब जैवाल, उद्दालक और याज्ञवल्क्य ब्राह्मणवाद को बढ़ावा दे रहे हैं। यह वेद से बाहर की कल्पना का मार्ग है, जिसके लिए जनक आदि शास्त्रार्थ आयोजित कराने में लगे थे। एक तरह से जड़वाद को धर्म का रूप दिया जा रहा था लेकिन ब्राह्मण-क्षत्रिय धन-कुबेर बुद्ध के प्रभाव में आ रहे थे। बुद्ध ने अपने आत्मवाद-जड़वाद में कुछ बातें मिलाकर कड़वाहट दूर की। यह ऐसी स्थिति थी जिसमें प्रवाहण के पुनर्जन्म सिद्धांत के लिए भी गुंजाइश रहती थी। संयोग से राजा और सेनापति, दोनों की पत्नियां बुद्ध की उपासिका बनीं। राजा के साथ संदेह की स्थिति आते ही बंधुल और उसके पुत्रों को छल से युद्ध में फंसा कर मरवा दिया गया। कपिलवस्तु में इस समय दास प्रथा ज़ोरों पर थी। दासों में विद्रोह के बीज फूट रहे थे। विद्रुडय प्रसंग यहां कपिलवस्तु को निःशाक्य करने के संकल्प से जोड़ता है। कारयण की सहायता से विद्रुडय राजा बन जाता है। प्रसेनजित छला जाता है और बंधुल के खून का बदला उसकी मृत्यु से पूरा होता है। रचनाकाल से 100 पीढ़ी पूर्व की कथा उस काल की सामाजिक विषमता को रेखांकित करती है।

'नागदत्त' 335 ई.पू. की कथा है, जिसका प्रारंभ विष्णुगुप्त व नागदत्त के संवाद से होता है। प्रश्न उठता है कि धर्म क्या है? आवश्यक का अभिप्राय क्या है? विष्णुगुप्त की सोच स्पष्ट है। वह आवश्यक का मतलब, सिर्फ एक के लिए आवश्यक से नहीं लेता। बड़े शत्रु का मुकाबला करने के लिए वह पार्श्वों जितना मजबूत होना चाहता है। छोटे-छोटे जनपदों की जगह विशाल राज्य कायम करना उसकी इच्छा है किंतु नागदत्त गण स्वतंत्र्य के पक्ष में है। हां, सारे उत्तरापथ का एक संघ अवश्य बन सकता है। बस, संघ सबसे ऊपर हो। नागदत्त को जनता की दुर्गति नहीं सुहाती। वह यह भी जानता है कि किसी बड़े राज्य के हाथ में चले जाने के बाद निकलना मुश्किल हो जाता है। बाल-सखा रह चुके दो मित्रों के विद्यार्थी-जीवन की यह अंतिम भेंट है।

इसके बाद नागदत्त तक्षशिला के एक-वैद्य के रूप में यात्रा पर है। तभी उसे शाहशाह की बहन की चिकित्सा का अवसर और नैकट्य मिलता है। इस हिंदू वैद्य के इलाज से वह खुश है। उसे पर्शुपुरी जाना है और नागदत्त को वह अपने साथ ले जाना चाहती है। कथा में मनुष्य निर्मित पर्शुपुरी का वैभव आता है। नागदत्त दक्षिणा में दासी सोफिया को मांग लेता है। वह उसे दासी नहीं मानता और सोफिया उसे चाहने लगती है। एथेंस पर मकदूनिया के राजा फिलिप की विजय के बाद उसे अपने परिवार से अलग हो जाना पड़ा था।

संवाद यहां एक स्त्री की स्थिति पर विचार करता है। दास-प्रथा के विरोध पर बात होती है। नागदत्त को मनुष्य विरोधी व्यवस्था पसंद नहीं। वह शोषण के विरुद्ध है। सोफिया के साथ उसने मकदूनिया देखी। अरस्तू को देखा। देखा कि युद्ध कैसे सुंदर नगरों को बर्बाद कर देते हैं। एथेंस में सोफिया नागदत्त को अपना बना लेती है। यह प्रसंग अद्भुत है।

अंत में ये दोनों सलामी की खाड़ी जा रहे हैं। यहां यवन सेना ने पार्श्वों को पराजित किया था। यह वह समय है जब फिलिप के बाद सिकंदर मकदूनिया का राजा बनता है। राहुलजी उसे अलिक सुंदर कहते हैं। अरस्तू का यह शिष्य नागदत्त को विष्णुगुप्त की याद दिलाता है। समुद्र में तूफान से नौका पलटने को है और सोफिया व नागदत्त एक-दूसरे की भुजाओं में हैं। यह इतिहास, प्रेम, यात्रा और राजनैतिक चिंतन की कहानी है।

‘वोल्गा से गंगा’ में ‘प्रभा’ को विद्वानों व रसिकों ने ठीक ही सर्वश्रेष्ठ माना है। 50 ई. की यह कथा साकेत अर्थात् अयोध्या के इतिहास से प्रारंभ होती है। पुण्यमित्र इसे सबसे पहले राजधानी बनाते हैं। वाल्मीकि ने ‘रामायण’ में अयोध्या-गुणगान किया। अश्वघोष ने भी वाल्मीकि के काव्य का रसास्वादन किया। राहुलजी रेखांकित करते हैं कि ‘रघुवंश’ व ‘कुमारसंभव’ में रघु के कुमार के नाम से चंद्रगुप्त विक्रमादित्य व कुमार गुप्त (पिता-पुत्र) की प्रशंसा की गई। इस कथा में रचनाकार अनायास 200 वर्ष पूर्व की ओर ले जाते हैं। वहां से साकेत वासी सुवर्णाक्षी का प्रवेश होता है।

दस खंडों में विभाजित इस कथा में दूसरा खंड साकेत में वसंतोत्सव के आनंद को समर्पित है। यहीं तैराक विजेता सुवर्णाक्षी-पुत्र अश्वघोष और कुमारी प्रभा का असल परिचय आता है जो समान रूप से विजेता हैं। कथा में साकेत का गौरव है, अश्वघोष के रचना एवं गायन का परिचय है और है यवन नाटक में उसे निमंत्रण। नाटक में नायिका बनती है वहीं तैराक विजेता प्रभा और नायक अश्वघोष। एक-दूसरे के प्रति आकर्षण है इनका और प्रसंग खुलता है अश्वघोष रचित पहले भारतीय नाटक को लिखने का। इस नाटक में उर्वशी-वियोग की प्रेरणा का सूत्र खुलवाती प्रभा की चेष्टाएं बताती हैं कि वह प्रेरणा रचनाकार के उर में बसी थी। यह कोई और नहीं, प्रभा ही थी। नाटक भरुकच्छ होते हुए यवन रूपांतर में मिश्र के राजा तक पहुंचाने का संकेत मिलता है। अश्वघोष और प्रभा का परस्पर लगाव तो है किंतु पुरुष ब्राह्मण और स्त्री यवन राजपुत्री है। ऐसे में अश्वघोष प्रस्तुत करता है ब्राह्मणों के लिए नया सदाचार। पुरातन पंथी पिता प्रभा पर दबाव डालते हैं, किंतु प्रभा केवल यह कहती है कि अश्वघोष से आपकी बात कहूंगी।

प्रभा से संवाद में, उसे अपनी प्रेरणा बताता अश्वघोष कहीं कविता को परिभाषित भी करता है। कहता है, “कविता भीतर की अभिव्यक्ति नहीं है, बल्कि वह बाहर की अभिव्यक्ति भीतर है।” इसे भी वह प्रभा से समझा ही बताता है। प्रभा अश्वघोष को विश्व की महानिधि कहती है और अपने पूर्वजों के भारत में आने पर बौद्धों से मिले अपनत्व को रेखांकित करती है। उसे उनमें समता का विचार भाता है। भिक्षु बनने के बाद कोई भेद नहीं। अश्वघोष को जाति-वर्ण भेद रहित यह समाज अच्छा लगता है। उसे ब्राह्मणों के पाखंड से घृणा है। उसके संवादों में उसका ज्वलंत विरोध आता है।

प्रभा यहां एक समर्पिता प्रेयसी और आकर्षक चरित्र बनकर उभरी है जो अपने प्रेम को और ऊंचाई तब दे देती है जब वह अपने प्रेमी से प्रेम को शरीर से न नापने को कहती है। वह शाश्वत प्रेम की बात करती है।

बौद्ध दर्शन और आत्मवाद, अनित्यता के साथ ही यवन दार्शनिकों का संदर्भ आता है। विचार सार्थक यह है कि अतीत मुर्दा है, आगे बढ़ने वालों के लिए। आगे बढ़ना तभी होगा जब दुनियाभर से विषमता नष्ट हो जाएगी।

प्रभा-अश्वघोष की अंतरंगता के दृश्य व संवाद कथा को तरल बनाते हैं। दोनों एक-दूसरे के अभाव में आत्महत्या से अलग, कुछ रचनात्मक करना चाहते हैं किंतु प्रभा का पत्र नाटकीय मोड़ लाता है जिसमें वह अश्वघोष को काव्य-प्रेरणा देने के लिए अपना अक्षुण्ण यौवन प्रदान कर अंतिम मानस आलिंगन कर विदा ले लेती है।

प्रभा के बाद अश्वघोष संघ की शरण में जाता है। भिक्षु बन वह भदंत धर्मरक्षित के साथ पाटलिपुत्र के लिए प्रस्थान करता है। वहां अश्वघोष का ऊंचा स्थान बना। वह निज-परक विचार से परे था। बस उसे अपने प्रेम की प्रेरणा की रक्षा करनी थी, इसीलिए उसने

अपनी कृतियों में सदा अपने लिए लिखा, “साकेतक आर्यसुवर्णाक्षी-पुत्र अश्वघोष।” अश्वघोष के काव्य और उनके उत्स की ओर यहां विरल संकेत मिलते हैं।

‘सुपर्ण यौधेय’ है 420 ई. की कथा, जिसे प्रथम पुरुष में सुपर्ण ने कहा है। एक स्थान पर टिक कर न रह पाने वाला यह पात्र यह देखकर परेशान है कि एक जगह का अधर्म क्यों दूसरी जगह धर्म होकर चलता रहता है! अपने कुलवाहों की भिन्नता और स्वयं के हास्य का पात्र बनने पर एक बड़ा प्रश्न उसमें पैदा होता है कि हम कौन हैं? क्यों ब्राह्मण हमें एक पवित्र में नहीं खिलाते! वह दादा से प्रश्न करता है। इसके मूल में है कुल सम्मान की रक्षा। पता चलता है कि उसकी पीढ़ी वस्तुतः यौधेय की अपेक्षा नगर अधिक है। उसे बताया जाता है कि यौधेय ब्राह्मणों से अधिक शुद्ध आर्य हैं। वे सतलज और यमुना के मध्य मरुभूमि के पास तक के निवासी थे। सारे यौधेय स्वामी थे। दादा को दस वर्ष की उम्र में ही माता-पिता के साथ देश छोड़ देना पड़ा। चंद्रगुप्त विक्रमादित्य ने यौधेयों को उच्छेद कर दिया। उसने अपने पदाधिकारी नियुक्त करने की बात कही। अंततः यौधेयों को उससे युद्ध करना पड़ा और वे पराजित हो गए। युद्ध पूरे तीस वर्ष चला। वास्तव में यौधेय स्वाधीन होकर जीने के आदी थे गण-शासन में। गणराज्य में ब्राह्मण-क्षत्रिय का अंतर न था। जब विश्वमित्र, वशिष्ठ आए तो उन्होंने वर्णभेद किया। एक पिता के पुत्रों में कोई रन्तिदेव की भाँति क्षत्रिय तो कोई गौरिवीति की भाँति ब्राह्मण ऋषि होने लगा। ‘महाभारत’ में यह संदर्भ मौजूद है। ब्राह्मण में भी फिर शुरू हुआ—कहां के ब्राह्मण! नगरों में बसने वाले नगर ब्राह्मण कहलाए। सुपर्ण के कुल के स्वयं को ‘यौधेय ब्राह्मण’ कहते हैं।

युवा होते-होते सुपर्ण एक विवेकशील व्यक्ति बन जाता है। वह कालिदास से भी संवाद करता है निर्भीक। वह गुप्त राजाओं को धर्मध्वंसक कहता है। उसकी मान्यता है कि नंदों, मौर्यों, यवनों, शकों और हूणों ने भी जो पाप नहीं किया, वह इन गुप्तों ने किया। इन्होंने भारतमही से गण-राज्यों का नाम मिटा दिया। यहां प्रजा का कोई अधिकार न रहा। उसका मन था कि काश कालिदास भी अश्वघोष के पदचिन्हों पर चलते।

यहां कालिदास का आत्मस्वीकार गौरतलब है, “मैं सिर्फ कवि हूं। अश्वघोष महापुरुष और कवि दोनों थे।” कालिदास अपनी कमजोरियां स्वयं गिनाते हैं, जिनमें वैभव-विलास के अनेक साधन मौजूद हैं। सुपर्ण को कालिदास का राजाओं के प्रति चाटुकारी भाव पसंद नहीं। उसे ब्राह्मणों के स्वार्थीपन से चिढ़ है। उज्जयिनी में रहकर ही वह अपनी ज्ञानपिपासा शांत करने के साथ ही विस्तृत संसार को जाना।

कथा में गुप्त शासन काल की व्यवस्था की आलोचना करता है सुपर्ण। कर अधिक लगे, प्रासादों-भवनों पर व्यवस्था ने खूब खर्च किया। कामगारों का जीवन स्तरहीन हुआ। बेबस आम जन को व्यवस्था पर विचार करने की सुध ही नहीं रही। सुपर्ण कथा में सोचता है कि यदि यही सब चलता रहा तो यह देश महज दासों का देश रह जाएगा। दिक्तरा के साथ रहकर, उनसे सुनकर सुपर्ण ब्राह्मणों के मायाजाल को और स्पष्ट समझ गया। दिक्तरा ने उसे बुद्ध के सद्प्रयासों के बारे में बताया, किंतु गुप्त राजवंश के कारण उनके ये प्रयास अधिक समय न चल सके। ब्राह्मणों द्वारा बहिष्कृतों को भी ऊंचे वर्ण दिए जाने का रहस्य दिक्तरा खोलते हैं।

सुपर्ण दिक्तरा के साथ संवाद में अपनी मातृभूमि का फिर से उत्थान करने की बात रखता है तो कथांत में वह उसे अपना आशीर्वाद देते हैं।

'दुर्मुख' शीर्षक अवश्य है, किंतु 630 ई. की इस कथा के तीन खंडों में अंतिम है दुर्मुख। यहां भी कहानी प्रथम पुरुष में ही चलती है, और पहले खंड में हर्षवर्धन अपनी कथा कहता है। यह राजा का अपना पक्ष है, जिसमें वह अपनी उपाधि शीलादित्य का अर्थ देता है 'सदाचार का सूर्य'। वह विक्रमादित्य व स्वयं के अंतर को सामने रख, यह कहना चाहता है कि उसमें किसी को दबाने की भावना नहीं है। वह सभी धर्मों की समान अभिवृद्धि चाहता है। स्वयं को स्वार्थहीन बताते हुए वह राजा की चापलूसों से घिरे रहने की विवशता का जिक्र भी करता है जबकि वह तो राज्य का स्वीकार ही सारे प्राणियों के हित के लिए करता है। वह अपनी उपलब्धियां गिनाते हुए, कला-संस्कृति के संरक्षक के रूप में स्वयं को रखते हुए बाण व कालिदास का उल्लेख करते हुए उनकी कमजोरियों का उल्लेख करता है। उसके नाम से बाण का लेखन भी उसे पसंद न था, उसका कहना है कि दो-एक बातों को छोड़ 'कादंबरी' का भी वर्णन मेरा नहीं समझा जाना चाहिए। वह अपनी जातिगत पहचान वैश्यक्षत्रिय बताता है।

दूसरा खंड बाण का पक्ष सामने रखता है। उसे हर्ष द्वारा स्वयं को लंपट कहना ठीक न लगा। स्वयं को वह एक स्पष्ट और बेलाग इंसान के रूप में प्रस्तुत करते हुए कहता है, "मैंने तरुणाई के आनंद के साथ कला को भी मिला दिया।" उसका कहना है कि हर्ष के नाम का प्रयोग रचना में उसने स्वयं को छिपाने के लिए किया था। यदि मेरा नाम ज़ाहिर हो जाता, तो मैं नाटक मंडली का सूत्रधार ही न रह पाता। हर्ष के राज्य में बसना मजबूरी न होती, तो वह उसका दरबारी कवि न बनता। उसने नाटकों के लिए तरुणियों को राजा-सामंतों से कैसे छुड़ाया, यह दिलचस्प है। वह सती प्रथा का पहला विरोधी कवि था। उसे विधवा विवाह ठीक लगा। आत्महत्या को वह अधर्म मानता था। उसने हर्ष के गुण-दोषों को सही रेखांकित किया।

तीसरा खंड दुर्मुख का पक्ष है। कटु सत्य बोलने वाला यह चरित्र लोक-वंचना के भय से नालंदा छोड़ता है। उसे नालंदा के विद्यार्थियों की कमजोरियां मालूम हैं। वह यह भी कहता है कि बोलने से पूर्व उसे राजसत्ता का ध्यान रखना होता है। वह दास-दासियों का हितैषी है और राज्यश्री को इस पक्ष में कर लेता है। वह हर्ष की श्रमण-ब्राह्मणों की झोली भरने की वृत्ति की आलोचना करते हुए कहता है कि वह शीलादित्य नहीं, शीलाधकार है। उसने चांडालों के प्रति अस्पृश्य रवैये की आलोचना की और धर्म-व्यवस्था के गठबंधन को ग़लत कहा। धर्म को एक ढोंग बताया। उसकी मान्यता है कि जब तक राजा रहेंगे, उनके दान-पुण्य से जीने वाले श्रमण-ब्राह्मण रहेंगे, तब तक पृथ्वी स्वर्ग नहीं बन पाएगी।

'वोल्गा से गंगा' की 14वीं कथा है 'चक्रपाणि'। इसका समय है 1200 ई.। यह तब की कहानी है, जब कन्नौज भारत का सबसे बड़ा और समृद्ध नगर माना जाता था। राहुलजी का कथन है कि हर्षवर्धन के समय से अब तक दुनिया में बहुत परिवर्तन हो चुका था किंतु तबसे अब, भारतीय दिमाग में भारी कूपमंडूकता आ गई थी। इस्लाम के जन्म और विस्तार के साथ सिंध के इस्लाम शासन में चले जाने के साथ ही यह कथा बताती है कि भारतीय राजवंशों में एकता न होने के कारण इस्लाम की राह और आसान हो गई। राहुलजी इस्लाम के परिवर्तित मिजाज पर भी नज़र रखते हैं और तुर्क सेना के विरुद्ध महाराज जयचंद के चापलूसों का हास्यास्पद बर्ताव भी सामने रखते हैं। जयचंद की वीभत्स विलासिता के दृश्यों में कमजोर सत्ता सामने आती है। कवि चक्रवर्ती से संवाद में जयचंद की कमजोरी रेखांकित होती है, किंतु यह चालाकी भी कि प्रजा की अंधी आंखें मौजूद रहनी चाहिए, उन्हें सब का साक्षात्कार कराया जा सकता है। जयचंद द्वारा पृथ्वीराज का साथ देने से इंकार हो या कुमार के साथ वैद्यराज के संवाद में उसकी

पिता से असहमति, कुमार की विवेकशीलता हो या धर्म का अजीर्ण और शासन की कमजोरी, अनायास आया स्त्री-विमर्श हो या तुकों से सामना न कर पाने की दयनीय स्थिति, ढोंग का विरोध हो या बनारस को दूसरी राजधानी बनाकर वहां प्रस्थान करते कुमार का यह निश्चय कि अब चांडाल व ब्राह्मण का भेद मिटाकर शासन होगा, यह इतिहास कथा इस समय विशेष की एक तटस्थ समीक्षा है।

1300 ई. की कथा कहती है 'बाबा नूरदीन'। यहां शुरुआत होती है जहांपनाह और मुल्ला अबू मुहम्मद के संवाद से। बात यह खुलती है कि हिंदू के स्वतंत्र खिलजी शासक अब भारत में रहने का मन बना चुके हैं। वे यहां के लोगों में सुख-शांति चाहते हैं। इस्लाम का विस्तार तो वे चाहते हैं, लेकिन लूट और रिश्वत खत्म होने के साथ ही गांव के आम जन की जिंदगी बेहतर करने पर गंभीरता से सोच रहे हैं। उन्हें सामंतों की नाराजगी की फिक्र नहीं। वे पंचायतों को फिर से जिलाना चाहते हैं। हिंदू प्रजा के रीति-रिवाज के सम्मान के साथ ही वे चाहते हैं कि दिल्ली की सल्तनत में इस्लामी शरीयत नहीं, सुल्तानी शरीअत बर्ती जाएगी। यहां नष्ट बौद्ध मठों की ख़बर है, बाबा और मौलाना अबुल-अलाई का तक्र भरा संवाद है जिसमें कट्टरता से बचने की सलाहियत है। इसीलिए सुल्तान के प्रति प्रजा में अच्छी भावना है। अंतिम खंड में दो फ़कीरों के संवाद में शोषक धनिकों के प्रति आक्रोश है कि जब तक वे रहेंगे, तब तक अधर्म का पलड़ा भारी रहेगा। पृथ्वी पर प्रेम का राज्य तभी स्थापित होगा, जब सारे गोरखधंधे मिट जाएंगे।

'सुरैया' का समय है 1600 ई. का। सुरैया व कमल के संवाद में उनका प्रेम खुलता है। उधर अकबर और उसके मंत्रियों के मध्य अनौपचारिक संवाद में अकबर-बीरबल के किस्सों की ख़बर के बीच एक नायाब किस्सा आता है और बात आती है हिंदू-मुस्लिम की एक बिरादरी की। राजा और उसके मंत्रिगण जो सोचते हैं, वह मुल्ले और पंडित कहां साचते हैं! अकबर की तमन्ना को जैसे पूरा करने के लिए ही कमल व सुरैया की कथा बुनी गई है। ये दोनों बचपन से एक-दूसरे को जानते हैं। बड़े होते-होते प्रेम-प्रगाढ़ हो जाता है और इनके परिवारों तक यह ख़बर भी पहुंच जाती है। परिवार भले तैयार हैं, लेकिन बाहरी दुनिया अभी इसके लिए तैयार नहीं। अच्छी बात ये है कि ये दोनों चरित्र वर्तमान दुनिया की नहीं, आने वाली दुनिया की परवाह करते हैं। इनके दिमाग साफ़ हैं, ये स्त्री को परदे के भीतर नहीं देखना चाहते। इन्हें फ्लोरेंस इसलिए पसंद है कि यहां छुआछूत नहीं है खाने-पीने की। चाहते हैं कि अपना देश भी ऐसा हो। वे छापेखाने से होने वाले दिमागी विकास की बात करते हैं और फिरंगियों की वैज्ञानिक सोच व मेहनत की प्रशंसा करते हैं।

कमल व सुरैया भारत की ओर सफ़र की शुरुआत करते हैं, किंतु समुद्री डाकुओं के हमले में असहाय हो, एक-दूसरे के साथ समुद्र में बिला जाते हैं। यह एक दुःखांत कथा है, लेकिन इन पात्रों के सपने एक नई सोच को जन्म देते हैं।

रेखा भगत 1800 ई. का एक आम भारतीय किसान है जो 'रेखा भगत' कथा का नायक बना है। कथा के प्रारंभ में कार्तिक पूर्णिमा का मेला है। मेले में रेखा भगत और उसके साथी बैठे बातों में मशगूल हैं। बात आती है-कंपनी राज में कोई चीज़ की बरकत नहीं रही। कंपनी रावण और कंस को भी जुल्म के मामले में मात कर चुकी है। मालगुजारी साल दर साल बढ़ती जाती है। संवाद में राज़ खुलता है कि कोई राजा नहीं, दो सौ फिरंगी डाकुओं ने जमात बांध ली है। इनके और मालिक-जमींदार के बीच आम जन पिस रहे हैं। सारे दयालपुर की हालत ख़स्ता हो चली है। जो विरोध करता है, उसे बर्ई परगना वालों की तरह जवाब मिल जाता है कि "सूखा-बाढ़ की भी मालगुजारी

दोगे?" मालुजारी के लिए ज़मींदार उसे ही बनाया जाएगा, जिनसे वसूली जा सके, पंचायत को नहीं। कथा में कंपनी का राज और व्यापारी नज़रिया खुलता है। पता चलता है कि अब कारीगरों की भी ख़ैर नहीं।

तिनकौड़ी दे और कोलमैन का संवाद कथा के महत्व को बढ़ाता है। तिनकौड़ी अपराधबोध से ग्रस्त है कि उसने साहब की मेहरबानी पाने के लिए एक तरुण ब्राह्मणी को उसके पास भेज दिया था लेकिन जब संवाद में ईस्ट इंडिया कंपनी की लूट का खुलासा होने लगता है, तो ज़मींदारी कायम करने वाले कार्नवालिस तक बात चली जाती है। यहीं से किसानों का शोषण शुरू हुआ। बदलते समय में प्रजातंत्र का महत्व, मनुष्य मात्र में समानता की ज़रूरत का अर्थ समझ आता है।

इस संवाद से, 'बलिदान अब अपने लिए करना होगा' की बात जाहिर होती है। विज्ञान का महत्व, भारतीय समाज की विसंगतियों का विरोध, विकास की गति को समझने की ज़रूरत रेखांकित होती है। कूपमंडूकता से निकल कर दुनिया-जहान को समझने की बात सामने आती है। सपने और हकीकत में अंतर तब खुलता है जब रेखा को ज़मींदार के अत्याचार और उसकी पत्नी को अपमान सहना पड़ता है। ऐसे में रेखा में फूटती है विरोध की चिंगारी। वह मालिक और दीवान को ख़त्म कर देता है। यह एक प्रतीक चरित्र है। कथा की अंतिम पंक्ति सत्य है—“क़साई कार्नवालिस ने कितने ही रेखा पैदा किए।” यह विद्रोह की आग थी, जो फिर फैलती ही चली गई।

'मंगल सिंह' 1857 ई. की कथा है जो मंगल सिंह और एनी रसल के साथ-साथ टॉवर देखने जाने और वहां हुए संवाद से शुरू होती है। मंगल सोलह बरस से इंग्लैंड में है। उसे वहां जाकर लगा जैसे अंधेरे से उजाले में चला आया है। वहां चीनी, भाप का स्टीमर, रेलवे, तार, दियासलाई, फोटो, बिजली की रोशनी सरीखे अनेक आविष्कार हो चुके थे। यह विकास का ऐसा चरण था जिससे अपना देश तो पीछे था ही, दुनिया का भविष्य भी जाहिर हो रहा था। अंग्रेज़ों द्वारा प्रताड़ित राज वंशी मंगल ईसाई हो गया था और इंग्लैंड जाते वक्त उसके दिमाग में दो ही बातें थीं—एक प्रभु मसीह के भक्तों का देश देखना और दो—अपने कुल की खोई राजलक्ष्मी को लौटाने की कोशिश। उसके दादा महाराज चेतसिंह को लुटेरे वारेन हेस्टिंग्स ने पामाल किया।

एनी से संवाद में मंगल हिंदू धर्म की बुराइयां, जैसे सती प्रथा आदि का खुलासा और मां का बदलता मन दीखता है। कोलकाता से इंग्लैंड पहुंच मंगल मार्क्स और एंगेल्स के प्रभाव में आता है। भारत के बारे में उनसे हुई बातचीत में वह जान जाता है कि वे भारत की, योद्धाओं के लिए प्रशंसा करता है किंतु पुराणपंथिता को भारत का सबसे बड़ा शत्रु मानता है।

एनी से संवाद अंग्रेज़ शासकों की चालाकी (जिसमें ग्राम प्रजातंत्र को नष्ट करना और आर्थिक स्वतंत्रता पर प्रहार शामिल है) उजागर होती है। भारत से कच्चा माल जाना और फिर तैयार होकर भारत में ही सामान (विशेषकर कपड़े) का बिकना ही नहीं, विज्ञान के चमत्कारों की चुनौती के सम्मुख भारत की स्थिति के साथ ही उस उम्मीद का भी ज़िक्र आता है जिसमें मजदूरों से यह आशा है कि वे थेली राज्य ख़त्म करके रहेंगे। यहां भारत व इंग्लैंड की स्त्रियों की स्थिति की तुलना तो है ही, इतिहास के वे प्रसंग भी हैं जिनमें विदूर के महल में पेशवा का उत्तराधिकारी नाना (छोटा) अवध पर अंग्रेज़ों के कब्ज़े को देख सक्रिय हो गया है। मंगल इंग्लैंड जाकर, अंग्रेज़ों की विद्या सीख आया है। वह अब उनसे लड़ सकता है। वह विद्रोहियों की सरपरस्ती करता है। नाना-मंगल संवाद में इस समय की संघर्षभरी चुनौतियां सामने आती हैं। दोनों के तक्र हैं अपने-अपने, किंतु मंगल अधिक समझ भरा

है। वह सैनिकों के साथ ही आम जनता से भी सहयोग लेने की बात करता है। इसके लिए अंग्रेज़ी हुकूमत ख़त्म होने से आम जन को जो फ़ायदा होगा, वह उसे समझाना होगा। वह गांव-गांव में फिर से पंचायत कायम करने की बात करता है। विकास के लिए नई संभावनाओं पर विचार करता है।

कथा स्वाधीनता संग्राम की शुरुआत से यथार्थ भरे नज़रिए से जुड़ती है। यहां सैनिक आम जन को विश्वास में लेते हैं। सेना अपने तरीके से तैयार होती है। मंगल सिंह आम सैनिकों के साथ घुलता-मिलता गया। नाना साहब की पराजय के बाद भी मंगल सिंह ने आज़ादी का झंडा उठाए रखा। रुहेलखंड व पश्चिमी अवध में डटा रहा। केवल पांच सिपाही साथ रह गए, तब भी। अंग्रेज़ों को इस भारतीय योद्धा की सराहना करनी पड़ी कि मृत्यु उसके लिए कैसे आनंद की चीज़ बन गई।

यहां ऐतिहासिकता कथा पर चढ़ी हुई ज़रूर लगती है, किंतु मंगल सिंह जैसा एक बड़ा नायक बड़े कायदे से उठ खड़ा हुआ है।

'सफ़्दर' का नायक 1922 के समय का अंग्रेज़ी रंग में रंगा एक भारतीय बैरिस्टर है। उनका स्नेही मित्र है शंकर सिंह, जो उनका सहपाठी भी रहा है। मूल प्रवृत्तियां दोनों की भिन्न हैं। शंकर खुशामद करने से कोसों दूर है। अन्य कहानियों की तरह यहां भी तक्र संवाद है, जिसमें बदलते वक्त की धड़कन सुनाई देती है। जब भारत की सरज़मीं जड़ से डगमग होने लगी है। इसकी विशेषता खुलती है सफ़्दर के संवाद में कि यह पहला समय है जबकि देश की जनता को स्वतंत्रता युद्ध में शामिल किया जा रहा है। शंकर के संवाद सफ़्दर को शर्मिंदा भी करते हैं और सचेत भी कि कितनी बार विदेशी कपड़ों की होली जल जाने पर भी उसके कान पर जूं तक नहीं रेंगी! ऊपर से अंग्रेज़ी भेस में सफ़्दर एक अंतरराष्ट्रीय समझ भरा इंसान है। उसे दुनियाभर में हुए या हो रहे परिवर्तनों की ख़बर है। इसीलिए बदलाव की गति धीमी हो गई। वह पेरिस कम्प्यून में उभर कर आए मजदूरों के महत्व को भी समझता है और 1885 में खड़ी हुई कांग्रेस को हिंदुस्तानी साहबों की पार्टी कहता है। उसे वह ब्रिटिश उदार दल की धर्म बेटी मानता है।

यह संवाद क्रांतिकारी आंदोलन की ताकत के आधार पर ही नहीं, नई परिस्थितियों में भारत में एक नए क्रांतिकारी युग की शुरुआत को भी रेखांकित करता है। सफ़्दर को विज्ञान की नई चीज़ों पर विश्वास है। शंकर को गांधी में क्रांति का एक योग्य वाहक नज़र नहीं आता। संवाद के अंत में, दोनों मिलकर क्रांति पथ पर साथ उतरें, सफ़्दर यह सुझाव देता है। वह स्वयं भी देश की आज़ादी का सिपाही बनने की ठान चुका है। उसकी पत्नी सकीना उसका साथ देती है। उसके मन के भीतर की अंग्रेज़ियत ख़त्म हो रही है।

असंख्य भारतीयों की तरह सफ़्दर और शंकर को भी जेल भेज दिया जाता है। जेल में सफ़्दर दूसरा ही व्यक्ति है। वह स्वयं तो स्वाधीनता के लिए प्रयत्नशील रहना चाहता है, किंतु उन गांधीवादियों का आलोचक है जो जेल पहुंचकर ही अपने दायित्व की इतिश्री समझ बैठे हैं। गांधीवादी विनायक प्रसाद से जेल में हुई उसकी बहसतलब बातचीत में अहिंसा विचार के केंद्र में आती है। उसके पक्ष में ही नहीं, विपक्ष में भी जमकर संवाद होता है। अच्छी बात यह है कि बहस की परिणति क्रांति का शक्तिशाली जनता को मानने पर होती है। एक तरह से यह गांधी की तक्रसम्मत आलोचना है।

'सुमेर' का समय 1942 ई. का है। इस कथा में सुमेर व रामबालक ओझा के बीच का संवाद इस समय विशेष का आईना ही है। पटना के ये दो बांध के रखवाले जब वार्ता में गहरे उतरते हैं, तो इतिहास की कई महत्वपूर्ण चीज़ें भी खुलने लगती हैं (जैसे पाटलिपुत्र

के तीन शत्रु—आग, पानी और आपस की फूट। रामबालक आधुनिक शिक्षा को अनर्थकारी मानता है, तो सुमेर एक बड़ी जरूरत। रामबालक गांधी का भक्त है तो सुमेर उनका आलोचक। वह अंबेडकर का भी आलोचक है। इसके लिए उसके तर्क हैं। वह चाहता है कि शोषण पूरी तरह से बंद हो। वह गांधी की खादी और बिड़ला-बजाजों के परस्पर हितसाधक संबंधों को अपने तर्कों से साबित करना चाहता है। वह चर्खे और कर्षे को शोषण का पोषक मानता है। उसे वर्ण व्यवस्था को मरण-व्यवस्था कहते हुए, हरिजन उद्धार एक ढोंग ही नजर आता है। वह मानता है कि पुराणपंथिता से पिंड छूट जाए, तो सब ठीक हो जाए। उसे इस बात से भी एतराज है कि विकास के तमाम संसाधन और उपकरण तो भारत के निर्यताओं के लिए उपयोगी बन जाते हैं, किंतु शोषण-ध्वंसक उपाय-साम्यवाद, सदा विदेशी बना रहेगा! वह साफ कहता है कि फासिज्म मजदूर-किसानों को दास बनाना चाहता है। इस रूप में उसे सोवियत एकमात्र उम्मीदभरा राष्ट्र नजर आता है जो समता के सिद्धांत पर अमल करता है।

दरअसल यह पात्र राहुल सांकृत्यायन की भाषा में ही बात करता है। उसे सही लगता है कि युद्ध से कोई तटस्थ नहीं रह सकता। यह विश्वस्तरीय युद्ध तानाशाहों का खात्मा करके रख देगा। भारत से सुभाष चंद्र बोस व उनके अनुयायी अपना मार्ग चुन चुके हैं। समता विरोधी

व्यवस्थाओं में आम नागरिक की जीवन-स्थिति व स्तर का तुलनात्मक अध्ययन तक यहां मिल जाता है।

सुमेर निर्णय लेने वाला चरित्र है। वह पढ़ाई छोड़ उड़तू स्कूल में जाने लगता है। वह स्वराज्य को बड़े आदमियों को लाभ पहुंचाने तक ही सीमित नहीं रहने देना चाहता। जिसे खंडित भारत की कल्पना ही परेशान करती है, उसे वह अपनी भाषा में समझाता है और प्रतिप्रश्न करता है—“क्या अखंड हिंदुस्तान वाले हिंदुकुश तक का दावा कर सकते हैं?” वह भारत को अनेक स्वतंत्र जातियों के एक अखंड देश के रूप में देखना चाहता है। उसे जनता का मन और अधिकार सर्वप्रमुख लगता है।

तीन खंडों में विभाजित इस कथा का अंतिम खंड सुमेर की लड़ाकू सक्रियता को दर्शाता है। जापानी फासिस्टों के भारत के पड़ोसी बर्मा में आने की खबर से उसका खून खौल उठता है। वह जीवन-पर्यंत जापानी फासिस्टों को खत्म करने में लगा रहना चाहता है। अंतिम दिन भी बंगाल की खाड़ी में वह जापान के एक जंगी पोत पर हवाई आक्रमण कर कामयाब रहा। वह और उसका गनर भले ही लापता हो गए, किंतु अपने मिशन से पीछे न हटे। विश्वयुद्ध की छाया में यह कथा भारतीय नागरिक के विद्रोही मन की थाह भी खूबसूरती से लेती है। □

संपर्क : सी-3/51, सादतपुर, दिल्ली-110090, मो. 9013266057

राहुल सांकृत्यायन.....

पृष्ठ 9 से आगे

किया।” राहुलजी छह महीने बाद भारत लौटे और आंदोलन में कूद पड़े।

काशीप्रसाद जायसवाल ने भी लिखा है, “राहुलजी अपने सामाजिक और राजनैतिक कार्य को सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण मानते हैं। ...राहुल सांकृत्यायन वस्तुतः जनता के आदमी हैं...।” जायसवालजी ने उन्हें राजनीति से पृथक् रखने का भी प्रयास किया था, मगर अपनी चौथी तिब्बत-यात्रा के बाद राहुलजी पुनः जोर-शोर से राजनीति में कूद पड़े। गंतोक से कलकत्ता पहुंचने पर पहले ही दिन घोषणा कर दी, “मैं अब क्रियात्मक राजनीति में भाग लेने जा रहा हूँ।” आगे लिखते हैं, “मैं पहले भी राजनीति में अपने हृदय की पीड़ा दूर करने आया था, गरीबी और अपमान को मैं भारी अभिशाप समझता था।”

राहुलजी कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य बने, उन्होंने किसान-सत्याग्रह आयोजित किए, जेल गए, जेल में खूब लेखन-कार्य किया, राजनीति से संबंधित भी काफ़ी साहित्य लिखा। अगस्त 1947 में स्वतंत्र भारत में वापस लौटने के बाद भी राजनैतिक कार्य करने की उनकी लालसा बरकरार थी मगर सम्मेलन का सभापति चुने जाने पर और फिर पार्टी से पृथक् होने पर उनके जीवन का मार्ग ही बदल गया। फिर भी उन्होंने स्तालिन, लेनिन, कार्ल मार्क्स तथा माओ की जीवनियां लिखीं, ‘कम्युनिस्ट क्या चाहते हैं?’ जैसे अनेक पंफ्लेट लिखने-छापने की योजना बनाई थी।

राहुलजी ने बंबई सम्मेलन के सभापति-पद से दिए गए अपने भाषण में ‘इस्लाम के भारतीयकरण’ के बारे में जो बातें कहीं थीं उन्हें उस समय पार्टी के नेता ठीक से समझ नहीं पाए थे। राहुलजी की भारतीयता ‘हिंदू भारतीयता’ नहीं थी। राहुलजी समग्र भारतीय संस्कृति को अपनी प्यारी संस्कृति मानते थे, अपने को उसी भारतीय संस्कृति का एक प्रतिनिधि मानते थे, उत्तराधिकारी मानते थे, बावजूद इसके कि

वे अनीश्वरवादी थे, बुद्ध के प्रति बहुत सम्मान रखते थे, साम्यवादी थे और धर्म तथा जात-पात की संकीर्णता से कोसों दूर थे। राहुलजी ने देश के विभिन्न प्रदेशों की तो बार-बार यात्राएं की ही थीं, उन्होंने अन्य अनेक देशों की भी यात्राएं की और उनकी संस्कृतियों को निकट से देखा-परखा था, इसीलिए वे भारतीयता को या भारतीय संस्कृति को इसके सही व्यापक अर्थ में समझने में समर्थ थे।

राहुलजी को भारतीय संस्कृति से प्रेम था, उन्हें जनता की भाषा में बोलना और लिखना पसंद था लेकिन उनके समूचे लेखन पर और उनकी सारी यात्राओं पर विचार किया जाए तो वे केवल भारत के ही नहीं, बल्कि समूचे एशिया के एक घुमक्कड़-राज महापंडित के रूप में उभरते हैं।

राहुलजी सचमुच ही जीवनभर छलांगों पर छलांगें मारते रहे। छलांगें लगाते उनके नाम बदले, चोले बदले, धार्मिक मान्यताएं बदलीं, यहां तक कि विचार भी बदलते रहे। बहुतों को इससे भले ही आश्चर्य होता रहा हो, परंतु राहुलजी के लिए, उनकी यह सतत गतिशीलता, यह परिवर्तनशीलता, एक सहज स्वाभाविक चीज थी। उनका आदर्श रहा, बुद्ध का यह वचन—

“बड़े की तरह पार उतरने के लिए मैंने विचारों को स्वीकार किया, न कि सिर पर उठाए-उठाए फिरने के लिए।”

राहुलजी द्वारा बार-बार दोहराए गए उनके इस आदर्श-वाक्य को स्मरण रखा जाए, तो फिर उनके बुद्धिवैभव को और उनके विराट व्यक्तित्व को समझने में कोई विशेष कठिनाई नहीं होनी चाहिए! □

(राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित पुस्तक ‘महापंडित राहुल सांकृत्यायन : जीवन और कृतित्व’ से साभार)

राहुल सांकृत्यायन और 'हिंदी-उर्दू-हिंदुस्तानी' का सवाल

मंगलमूर्ति

यह वर्ष हिंदी नवजागरण के दो महत्वपूर्ण हिंदी लेखकों महापंडित राहुल सांकृत्यायन और आचार्य शिवपूजन सहाय का 125वां जयंती वर्ष है। इन दोनों समवर्ती लेखकों के जन्म (1893) और निधन (1963) के वर्ष भी एक ही रहे। यदि इसे हम एक आकस्मिक संयोग के रूप में ही न देखें, तो इस महत्वपूर्ण संवर्तिता का महत्व द्विगुणित हो जाता है (जब हम देखते हैं कि इसी ऐतिहासिक काल-खंड में भारतीय स्वाधीनता-संग्राम के दौरान कार्यशील इन दोनों महान साहित्यकारों के साहित्यिक जीवन में राष्ट्रभाषा हिंदी के प्रश्न पर भी एक प्रछन्न समानांतरता स्पष्ट परिलक्षित होती है।



भाषा का प्रश्न राजनीति से कहीं अधिक समाज से जुड़ा होता है। समय और समाज ही भाषा के नद-प्रवाह के दो किनारे होते हैं। साहित्य भाषा के इसी निरंतर प्रवाहमान विकास का एक सांस्कृतिक एवं अनिवार्य पक्ष होता है। भाषा, समय और समाज परस्पर एक-दूसरे के साथ प्रवाहित होते हुए, एक-दूसरे को अनिवार्यतः प्रभावित करते हुए विकासमान होते हैं। इतिहास के विशेष काल-खंडों में इन पर राजनैतिक-आर्थिक प्रभाव अवश्य पड़ते हैं, पर वे इनके प्रवाह की मूल दिशा को परिवर्तित नहीं कर सकते, अर्थात्, इनकी दिशा को बिलकुल दाएं-बाएं या पीछे की ओर नहीं मोड़ सकते। हिंदी नवजागरण और स्वाधीनता-संग्राम के काल-खंड में हिंदी के राष्ट्रभाषा-संबंधी प्रश्न को भी हम इसी परिप्रेक्ष्य में देख सकते हैं। वस्तुतः इस दौर के संपूर्ण हिंदी भाषा-साहित्य के विकास को हम इस भाषागत-दृष्टिकोण से देख सकते हैं, और इसमें ये दो अन्य हिंदी-सेवी आचार्य शिवपूजन सहाय और राहुल सांकृत्यायन हमारे लिए विशेष महत्वपूर्ण और प्रातिनिधिक व्यक्तित्व प्रतीत होते हैं। साहित्य-लेखन के क्षेत्र में आधुनिक हिंदी के इन दो महान लेखकों की चर्चा इधर कई संगोष्ठियों, परिचर्चाओं, प्रसंगों में हो रही है किंतु राष्ट्रभाषा हिंदी के प्रश्न पर-राष्ट्रीय एकता और अस्मिता के संदर्भ में-इन दो महान साहित्यकारों के विचारों में कितना साम्य रहा है, उसमें कितने महत्वपूर्ण बिंदुओं पर विचार हुए हैं, और इस दिशा में इनका योगदान कितना महत्वपूर्ण रहा है, इस पर भी इस दौर में गंभीरता से विचार करने की आवश्यकता है।

हिंदी नवजागरण काल में स्वाधीनता-आंदोलन के दौरान अखिल भारतीय-स्तर पर अंग्रेजी भाषा और शिक्षा के विरुद्ध भारतीय भाषाओं-विशेषतः हिंदी में एक पुनर्जागरण का भाव आप्लावित हुआ था। यही दौर आधुनिक हिंदी साहित्य के आविर्भाव और पत्रकारिता के विपुल प्रसार का दौर भी रहा। इसमें एक धारा साहित्य-सृजन और पुस्तक-प्रकाशन की रही और दूसरी राष्ट्र-धर्मी अथवा साहित्य-धर्मी पत्रकारिता की रही। शिवपूजन सहाय पहली धारा में प्रारंभिक अवगाहन के बाद व्यक्तिगत कारणों से दूसरी धारा की ओर मुड़ गए और राहुलजी अपनी यायावरी के वेग से दोनों ही धाराओं में बहते हुए अग्रसर होते रहे।

तीस के दशक में, असहयोग आंदोलन के दौरान, राष्ट्रभाषा हिंदी का प्रश्न-विशेषतः सांप्रदायिक वैषम्य के परिप्रेक्ष्य में- कांग्रेस के लिए भी एक बहुत अहम् मुद्दा बन चुका था। हिंदी-उर्दू और 'हिंदुस्तानी' का सवाल देश के सम्मुख एक ज्वलंत प्रश्न बन कर खड़ा हो गया था। तीस के दशक के अंत के साथ राहुलजी अपने जीवन के लगभग 45 वर्ष पूरा करते हुए हिंदी-साहित्य-जगत में कीर्ति के शिखर पर पहुंच

चुके थे। उनके जीवन-क्रम पर दृष्टिपात करने पर सहज ही लगता है कि उस समय तक (और उसके बाद भी) वैसा गतिमान यायावरी जीवन, उतना कार्य-सघन, संघर्षशील, सृजनशील, मूर्तिभंजक व्यक्तित्व हिंदी क्या किसी भारतीय भाषा के साहित्यकार का नहीं था। वास्तव में, राहुलजी का जीवन इस अर्थ में सर्वथा विस्मयकारी है। वे कब कहां कितने दिन रहते थे, जीवनानुभव और स्वाध्याय में किस तरह सल्लिप्त रहते थे, कितना और कैसे अनवरत उतना लेखन कर पाते थे, उनका ज्ञान-संसार कितना अपरिमित था- हिंदी साहित्य में फिर वैसा कोई तुलनीय और दूसरा व्यक्तित्व तो दिखाई नहीं देता। यह अविरल, निर्बाध गतिशीलता जितना उनके व्यक्तित्व का अंग थी, उतनी ही वह उनकी लेखन-शैली में भी दृष्टिगोचर होती है। उनके गद्य को पढ़ने पर उनकी वाक्य-संरचनाओं में, शब्द-चयन में सब में एक सरपट प्रवाह का भाव हर जगह दिखाई पड़ता है। जैसे संप्रेषण के आवेग में लेखन-क्रिया विचार-प्रवाह से सदा पीछे पड़ती जा रही हो।

राहुलजी के युवा-जीवन का लगभग एक दशक बिहार में बीता था जिसमें उनका हजारीबाग जेल का कारा-जीवन भी शामिल है। इस अवधि में साधु-जीवन के अभ्यास-काल में भी हिंदी भाषा और साहित्य से उनका गहरा लगाव रहा। वे अरबी-फ़ारसी और कई विश्व-भाषाओं के विद्वान् तो थे ही, भोजपुरी, मगही, अंगिका आदि कई स्थानीय बोलियों और लोक-संस्कृति का उनका ज्ञान भी अत्यंत विस्तीर्ण था। तीस के दशक के अंत तक उनकी लगभग 45-50 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी थीं जिनमें अधिकांश धर्म और भाषा-विज्ञान तथा यात्रा-विवरण से संबंधित थीं। इस दौरान वे 3-4 बार तिब्बत की यात्रा के अलावा रूस, जापान, ईरान और यूरोप के देशों की यात्रा कर चुके थे। समय-समय पर इन्हीं वर्षों में वे बिहार हिंदी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशनों में भी भाग लिया करते थे। इन सम्मेलनों में अक्सर भाषा-संबंधी प्रस्ताव ही प्रस्तुत किए जाते थे और ज्यादातर प्रस्तावों का संबंध शिक्षा अथवा कचहरियों में फ़ारसी या हिंदी भाषा अथवा लिपियों के प्रयोग से हुआ करता था। देश में स्वाधीनता आंदोलन के संदर्भ में हिंदू और मुस्लिम संप्रदायों के बीच बढ़ते वैमनस्य के परिप्रेक्ष्य में हिंदी-उर्दू बनाम अरबी-फ़ारसी का झगड़ा एक बड़ी समस्या बन चुका था जिसे एक-दूसरे से बिलकुल अलग अरबी-फ़ारसी और देवनागरी लिपियों के सवाल ने लगभग असाध्य बना दिया था।

बिहार हिंदी साहित्य सम्मेलन के 11वें भागलपुर अधिवेशन (अक्टूबर, 1933) में राहुलजी ने हिंदी के अंतरराष्ट्रीय प्रसार की

दृष्टि से देवनागरी लिपि के स्थान पर रोमन लिपि अपनाने का प्रस्ताव प्रस्तुत करना चाहा था, जो कड़े विरोध के कारण प्रस्तुत नहीं हो सका था। यद्यपि वहाँ राहुलजी को अपना पक्ष प्रस्तुत करने का अवसर मिला था। जैसा भगवान सिंह ने अपनी पुस्तक 'गांधी और हिंदी राष्ट्रीय जागरण' (पृष्ठ 84) में लिखा है, स्वयं जवाहरलाल नेहरू उन दिनों इस असाध्य समस्या के प्रसंग में अंतरराष्ट्रीयता के नाम पर रोमन लिपि की हिमायत करने लगे थे। यद्यपि महात्मा गांधी शुरू से रोमन लिपि के इस अव्यावहारिक सुझाव के बिलकुल खिलाफ थे।

बिहार हिंदी साहित्य सम्मेलन के इन अधिवेशनों में ज्यादा चर्चा उन दिनों इन्हीं प्रश्नों पर हुआ करती थी, और इन सम्मेलनों में उस समय बिहार और अन्य प्रांतों के भी सभी प्रमुख साहित्यकार-पत्रकार सम्मिलित हुआ करते थे, जिनमें शिवपूजन सहाय भी होते थे। आगे चलकर सम्मेलन के 16वें रांची अधिवेशन (दिसंबर, 1938) में तो राहुल सांकृत्यायन ही सभापति मनोनीत हुए थे और अगले 17वें पटना अधिवेशन (फरवरी, 1941) में आचार्य शिवपूजन सहाय सभापति मनोनीत हुए थे। इन दोनों अधिवेशनों में सभापति के भाषणों में हिंदी-उर्दू बनाम 'हिंदुस्तानी' का प्रश्न ही उभर कर सामने आया था। अक्सर सम्मेलन के इन अधिवेशनों में राजेंद्र प्रसाद भी उद्घाटनकर्ता अथवा स्वागताध्यक्ष के रूप में उपस्थित रहा करते थे। पटना वाले 17वें अधिवेशन का उद्घाटन राजेंद्र प्रसाद ने ही किया था। इस सम्मेलन में भी हिंदुस्तानी के संबंध में एक महत्वपूर्ण प्रस्ताव उपस्थित किया गया था जिस पर काफी उत्तेजनापूर्ण वाद-विवाद हुआ था, लेकिन प्रस्ताव पर मत-विभाजन नहीं हो सका था।

राहुलजी के सभापतित्व में हुए 16वें रांची अधिवेशन में भी हिंदुस्तानी का प्रश्न उठा था लेकिन सरकार द्वारा "व्यावहारिक क्षेत्र में 'हिंदुस्तानी' शैली को आदर्श के प्रतिकूल, कृत्रिम तथा अव्यावहारिक बनाने का जो प्रयत्न हो रहा था उसका विरोध किया गया था" (बि.हिं.सा. स. का इतिहास, पृष्ठ 84)। एक अन्य प्रस्ताव में भी "नागरी लिपि के स्थान में रोमन लिपि के प्रचार के प्रयत्न की निंदा की गई थी"।

इन दोनों अधिवेशनों में राहुलजी और शिवपूजन सहाय के अध्यक्षीय भाषणों में 'हिंदी-उर्दू-हिंदुस्तानी' के प्रश्न पर विस्तार से विचार किया गया था (राहुलजी वाले रांची अधिवेशन में पटना कॉलेज के प्रो. इश्वर दत्त का 'भारत की लिपि-समस्या' पर एक सुंदर और ओजस्वी भाषण भी हुआ था)। राहुलजी ने लगभग 30 पृष्ठ लंबे अपने अध्यक्षीय भाषण में मुख्यतः 'हिंदी-उर्दू-हिंदुस्तानी' के प्रश्न पर ही विचार किया है। उनका संस्कृत-अरबी-फारसी आदि भाषाओं का गहन अध्ययन उस लंबे भाषण में प्रतिबिंबित होता है। (राहुलजी और शिवपूजन सहाय के ये दोनों अध्यक्षीय भाषण बि. हिं. सा. सम्मेलन द्वारा संकलित भाषण-शृंखला में प्रकाशित हुए हैं।)

राहुलजी ने अपने भाषण में सबसे पहले भाषा को धर्म के दायरे में समेटने और उर्दू को केवल मुसलमानों की भाषा मानते हुए उसे हिंदी से बिलकुल अलग करने के लिए उसको अरबी-फारसी शब्दों से अधिक से अधिक बोझिल और आम लोगों के लिए कठिन और अबुझ

बनाने का कड़ा विरोध किया है। ईरान और तुर्की का उदाहरण देते हुए वे कहते हैं कि उन देशों की जनता तो मुसलमान ही है, पर वहाँ "वे लोग अपनी भाषा में अरबी के एक भी शब्द को रखने के लिए तैयार नहीं मालूम होते" लेकिन हिंदुस्तान के मुसलमान उर्दू भाषा को इस्लाम से जोड़ कर "उसमें 50-75 प्रतिशत अरबी के लफ्ज़ रखने पर ज़ोर देते हैं- "उर्दू का सवाल उसके हामियों द्वारा इस्लाम का सवाल बनाया जा रहा है, जो बड़े अफसोस की बात है"। हिंदी-भाषियों से भी राहुलजी कहते हैं कि जिस हिंदी का वे प्रयोग करते हैं वह केवल हिंदुओं की ही नहीं, मुसलमानों, सिखों, ईसाइयों-सभी संप्रदायों के आम लोगों द्वारा प्रयोग में लाई जाने वाली सार्वजनीन भाषा है, और उसको केवल हिंदू धर्म और संस्कृति के दायरे में समेट कर नहीं रखा जा सकता। "सारांश यह कि भाषा के सवाल में मजहब को किसी तरह का दखल देने का अधिकार नहीं"।

राहुल सांकृत्यायन भाषा-विज्ञान के महापंडित थे। वे जानते थे उर्दू और हिंदी बोलचाल और जन-प्रयोग में एक ही भाषा के दो रूप हैं, और हिंदी-उर्दू जिस भाषा-परिवार की भाषा हैं, अरबी उस भाषा-परिवार की भाषा ही नहीं है। वह इस्लाम धर्म की भाषा जरूर है, जैसे संस्कृत हिंदू-धर्म की मूल भाषा है किंतु संस्कृत से प्राकृत, पालि और अपभ्रंश के रास्ते चलकर हिंदी खड़ी बोली बनी है। अतः जैसे हिंदी हिंदू धर्म की भाषा नहीं है, वैसे ही उर्दू इस्लाम धर्म की भाषा नहीं है और धर्म के नाम पर हिंदी को संस्कृत से अथवा उर्दू को अरबी-फारसी से बोझिल बनाना भाषा के विकास के नियमों के सर्वथा विरुद्ध है। "हिंदी जिस तरह संस्कृत के 'आवश्यक शब्दों' को स्वीकृत करने का अधिकार रखती है, उर्दू को अरबी लफ्ज़ों को स्वीकृत करने का वैसा अधिकार हरगिज़ नहीं, यदि वह अपने नई हिंदुस्तानी ज़बान होने का दावा करती है। संस्कृत हिंदुस्तान की पुरानी ज़बान थी, जिसकी विरासत हिंदी को जन्म से मिली है। भारत में अरबी संस्कृत का स्थान लेने का दावा नहीं कर सकती" क्योंकि वह एक सर्वथा भिन्न भाषा-परिवार की भाषा है। मूल प्रश्न यह है कि धर्म और भाषा क्या समवृत्त धारणाएँ हैं? क्या किसी भाषा के बोलने वाले अनिवार्यतः सभी एक ही धर्म के लोग हो सकते हैं, और क्या उस भाषा की व्याप्ति उसी धर्म के शब्दकोष में सीमित होती है? धर्म के नाम पर किसी जन-उपयोग की भाषा का धार्मिकीकरण भाषा-विज्ञान के नियमों के सर्वथा विरुद्ध है। हिंदी-उर्दू एक जन-उपयोग की भाषा हैं, उनको धर्म के शब्द कोष से ज़बरदस्ती बांधना ग़लत है। भाषा के विकास को न धर्म और न ही राजनीति कभी बाधित कर सकते हैं। भाषा अपना विकास अपनी स्वच्छंद गति से करती है।



राहुलजी के लंबे भाषण के अंत में लिपि-समस्या पर भी संक्षेप में विचार किया गया है। उर्दू में अरबी-फारसी लिपि के अधिग्रहण से भी समस्या की जटिलता बढ़ी है। उर्दू-हिंदी के लिए अरबी के मुक़ाबले नागरी लिपि भारत की राष्ट्रीयता और अस्मिता को देखते हुए अधिक उपयुक्त हो सकती है। अरबी लिपि में लिखावट की अवैज्ञानिकता बहुत है, जो उर्दू भाषा में भी एक दोष बन जाती है। फिर भी महात्मा गांधी मुस्लिम-जन-भावना का ध्यान रखते हुए उर्दू की अरबी लिपि को नागरी के समकक्ष मानने को सदा तैयार रहे और राहुलजी भी उसका विरोध

नहीं, समर्थन ही करते हैं। उनका मूल कथन यही है कि भले ही भारत की राष्ट्रभाषा उर्दू-हिंदी नागरी और अरबी दोनों लिपियों में लिखी जाए, पर सांप्रदायिक वैमनस्य के नाम पर उस उर्दू-हिंदी जन-भाषा को धर्म और संप्रदाय के बाड़ों में खींच कर नहीं ले जाया जाए, उसे स्वच्छंद रूप से अपनी राह पर चलने दिया जाए, जैसे वह साहित्य के क्षेत्र में अब तक रसखान, जायसी, आलम, रहीम आदि के काव्य में गतिमान रही है। भाषा और साहित्य का यही अन्योन्याश्रय संबंध किसी देश की संस्कृति का आधार होता है। भाषा का राजनीतिकरण नहीं होना चाहिए, और न उसका धार्मिकीकरण करना ही देश के हित में हो सकता है। अगर हिंदी और उर्दू को एक-दूसरे के और निकट लाने के लिए, नागरी और अरबी दोनों लिपियों को स्वीकार करने की आवश्यकता पड़ती है अथवा हिंदी और उर्दू दोनों में कुछ भाषागत परिवर्तन भी करने पड़ते हैं, तो इनको भी स्वीकार करना देशहित में होगा, लेकिन इसके लिए किसी कृत्रिम 'हिंदुस्तानी' जैसे नए नाम की कोई आवश्यकता नहीं होनी चाहिए। हिंदी और उर्दू अलग-अलग रूप में दिखती हुई भी, बिना किसी वैमनस्य के, एक जन-भाषा के रूप में अपना विकास कर सकती हैं, और इस भाषागत समन्वयन में साहित्य-लेखन की महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। साहित्य ही भाषा में वह रस उत्पन्न कर सकता है, जिससे सांप्रदायिक-सामुदायिक जीवन सौहार्द-सिंचित हो सके, क्योंकि साहित्य ही संस्कृति का संचित कोष होता है, जो समाज को दिशा-निर्देशन देता है। भाषा और साहित्य को धर्म और राजनीति के रंग में रंगना कभी जनहित में नहीं हो सकता। भाषा जनता की जुबान पर गढ़ी जाती है, और साहित्य उसकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को संरक्षित करता है।

हिंदी भाषा और साहित्य के विषय में विशेष कर उत्तरार्द्ध हिंदी नवजागरण-काल में राहुलजी और शिवपूजन सहाय के सुदीर्घ लेखन और साहित्य-कर्म में हमको ऐसे ही चिंतन के दर्शन होते हैं। बिहार हिंदी साहित्य सम्मेलन के अगले 17वें पटना अधिवेशन में शिवपूजन सहाय के भाषण में ('साहित्य-समग्र'-4/133-48) भी 'हिंदी बनाम हिंदुस्तानी' के प्रश्न को बड़े ओजस्वी ढंग से उठाया गया है। बिहार के तत्कालीन साहित्यिक परिदृश्य का आशाजनक आकलन उपस्थित करने के बाद शिवपूजन सहाय अपने अध्यक्षीय भाषण में इस प्रश्न पर विचार करते हुए कहते हैं-

"सरकार जानती है कि हिंदी में राष्ट्र-निर्माण की अद्भुत सत्ता विद्यमान है। (इसलिए) राष्ट्रभाषा की तो बात ही क्या, केवल भाषा के अर्थ में भी 'हिंदुस्तानी' शब्द का ग्रहण असंभव है।... कुछ लोग राष्ट्रीय एकता की दुहाई देकर हमसे 'हिंदुस्तानी' का समर्थन कराना चाहते हैं ... (लेकिन) हिंदी के जीते-जी भाषा के क्षेत्र में हिंदुस्तानी को पैर रखने का कोई अधिकार नहीं।"

शिवपूजन सहाय का विरोध 'हिंदुस्तानी' नाम की एक कृत्रिम भाषा की ईजाद से था। भाषा ईजाद की चीज़ नहीं होती। वह तो सदियों में, विशेष भूभाग में रहने वाले, सांस्कृतिक सूत्रों से बंधे हुए, लोगों की जुबान पर गढ़ी जाती है। उसी प्रक्रिया में उस भाषा का साहित्य भी निर्मित होता है। भाषा की अस्मिता उसमें सृजित साहित्य से ही सिद्ध होती है। इसीलिए कोई भी कृत्रिम निर्माण से बनी भाषा का कोई साहित्य नहीं हो सकता और जिस भाषा का कोई साहित्य नहीं है, उसके मूल में कोई संस्कृति भी नहीं हो सकती। संस्कृति-हीन कोई भाषा निष्प्राण और निष्प्रयोजन ही हो सकती है। इसीलिए उत्तरार्द्ध नवजागरण-काल में, जब हिंदी भाषा और साहित्य का तेज़ी से चतुर्दिक विकास हो रहा

था, और वह स्वाधीनता-संग्राम की उर्जस्वी संवाहिका बन रही थी, उस समय शिवपूजन सहाय और राहुल सांकृत्यायन का राष्ट्रभाषा हिंदी का पुरजोर समर्थन और 'हिंदुस्तानी' का उग्र विरोध एक समानांतर स्वदेशी विचारधारा का उद्घोष था। और इस समर्थन का आधार इन दोनों विद्वानों का हिंदी-उर्दू प्रेम ही था जो आम बोलचाल के इस राष्ट्रभाषा-रूप में विभेद पैदा करने वालों का घोर विरोध कर रहा था।

शिवपूजन सहाय का लगभग उन्हीं दिनों जब 'हिंदी-उर्दू-हिंदुस्तानी' का यह सवाल अपने शबाब पर था- अपने कॉलेज की 'उर्दू लिटरेरी सोसाइटी' के सालाना जलसे (1945) में सभापति-पद से पढ़ा गया 'अकबर इलाहाबादी' पर एक परचा विशेष ध्यान देने योग्य है। शिवपूजन सहाय की प्रारंभिक शिक्षा भी उर्दू-फ़ारसी-अरबी में ही हुई थी और इसका गंगा-जमुनी प्रभाव उनकी विकसित गद्य-शैली में स्पष्ट दिखाई पड़ता है। अपने उस पच्चे में उन्होंने लिखा है, "आप यह सुन कर हैरत में आ जाएंगे कि हिंदी के मुसलमान कवियों की कविताएं अगर निकाल-बाहर कर दी जाएं तो हिंदी के भंडार का एक कोना ही सूना हो जाएगा। अमीर खुसरो, कबीर, मलिक मुहम्मद जायसी, रहीम खानखाना, उस्मान, मुबारक, आलम, शेख और 'मीर' वगैरह हिंदी को मालामाल और निहाल कर गए हैं।... रहीम ने तो संस्कृत में भी सुंदर कविता की है।... (दर-असल) हम और आप दूध-मिसरी की तरह घुल-मिल कर हिंदुस्तान की ताकत बढ़ा सकते हैं।" और वहीं 'अकबर इलाहाबादी' के ही हवाले से शिवपूजन सहाय ने उनका एक शेर 'हिंदू-मुस्लिम एका' के लिए इस संदर्भ में उद्धृत किया है-

हिंदू-मुस्लिम एक हैं दोनों, यानी ये दोनों एशियाई हैं

हमवतन, हमजुबा, हम किस्मत, क्यों न कह दू कि भाई-भाई हैं।

आज हिंदी-उर्दू का वही 'हमजुबान' रूप हमारी राष्ट्रभाषा हिंदी का रूप है, जो अब राष्ट्रीय से अधिक अंतरराष्ट्रीय रूप लेता जा रहा है। आज हिंदी का राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय रूप विश्व में अधिकाधिक सम्मान प्राप्त कर रहा है। भले ही आज भी धार्मिक सांप्रदायिकता का ज़हर राजनीति के क्षेत्र में जान-बूझ कर फैलाया जा रहा है, लेकिन साहित्य और पत्रकारिता के क्षेत्र में हिंदी के उस उर्दू-हिंदी समन्वित रूप का वह सपना आज साकार हो रहा है जिसे राहुल सांकृत्यायन और शिवपूजन सहाय जैसे हिंदी के कर्णधारों ने हिंदी नवजागरण-काल में देखा था। □

संपर्क : ए-1/9, विराट खंड, गोमती नगर, लखनऊ (उ.प्र.)
मो. 7752922938

कृपया ध्यान दें

चंदा भेजने और चंदे के बारे में पूछताछ के लिए अथवा पत्रिका प्राप्त न होने की स्थिति में कृपया वितरण एवं विज्ञापन व्यवस्थापक से सीधे संपर्क करें।

पता : वितरण एवं विज्ञापन व्यवस्थापक

प्रकाशन विभाग, कमरा नं. 48-53, सूचना भवन सी.जी.ओ.

कॉम्प्लेक्स, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003

फोन नं. : 011-24367453

ई-मेल : pdjucir @ gmail.com

महापंडित राहुल सांकृत्यायन

विष्णुचंद्र शर्मा

एक गोष्ठी हुई थी स्व. रामअवध द्विवेदी के घर और विशिष्ट अतिथि थे महापंडित राहुल सांकृत्यायन। विचार का विषय था, 'ऐतिहासिक उपन्यास'। औरों की बातें मुझे कुछ अधिक याद नहीं हैं। स्व. रामअवध द्विवेदी ने ऐतिहासिक उपन्यास के शिल्प पर कुछ विदेशी उपन्यासकारों का हवाला देते हुए बताया था कि ऐतिहासिक उपन्यास सिर्फ इतिहास का तथ्य नहीं हैं। उन्होंने 'वाणभट्ट की आत्मकथा' का जिक्र किया था। उनके बाद ही महापंडित का भाषण हुआ। उनका विरोध पूर्ववक्ता से स्पष्ट था, लेकिन विरोध का तरीका ऐसा न था जैसा अक्सर गोष्ठियों में देखा जाता है। गोष्ठियों में जिसका विरोध किया जाता है, वह विरोधी को ईर्ष्यावश, असफल समझता है और अपने को सफल। या फिर गोष्ठी में जिसकी प्रशंसा की जाती है उसको बढ़ाने के लिए औरों पर कीचड़ उछाली जाती है।



महापंडित के विचारों में सहज उदारता थी और अदम्य विश्वास था। उन्होंने कहा, "रामअवधजी के ढंग से, मैं ऐतिहासिक उपन्यासों को नहीं देखता हूँ। मेरे लिए किसी एक ही काल पर राजा-रजवाड़े की जीवनी का बहुत-सा चित्रण, ऐतिहासिक उपन्यास नहीं है। यह तो इतिहास-रस या ऐतिहासिक रोमांस है। ऐतिहासिक उपन्यास लिखने के लिए मैं सामग्री एकत्र करता हूँ। इतिहास, समाजशास्त्र और नृतत्वशास्त्र से फिर मुझे अपनी ऐतिहासिक स्थापना के लिए कथानक मिलता है। इस आधार पर मैं उपन्यास की कल्पना करता हूँ।" गोष्ठी में और भी लोग थे। सभी कुछ न कुछ बोले। गोष्ठी समाप्त हो गई।

महापंडित पैदल ही चल रहे थे। कुछ एम.ए. के विद्यार्थी और रिसर्च-स्कालर उनसे अपने विषय की बातें पूछ रहे थे। कुछ उनसे समय चाहते थे ताकि अपना काम उन्हें दिखा सकें। इसी बीच स्व. पं. शांतिप्रिय द्विवेदी उधर आते दिखाई दिए। महापंडित रिक्षो पर अभी बैठे थे। द्विवेदीजी ने उनसे कहा, "आपके लिए ही आया हूँ। सोचा गोष्ठी से लौटते समय बातें कर लूँगा।" बाएं कान को हथेली से कुछ फँलाकर वे महापंडित के रिक्षो के सामने आए। महापंडित रिक्षो से उतर गए। बात करते हुए उनके विशाल शरीर को कुछ झुकना पड़ा। उन्होंने कहा, "कहिए, क्या कर रहे हैं इधर?" द्विवेदीजी के पिचके गालों पर हंसी फैल गई। कान पर रखे हाथ को आकाश में घुमाते हुए उन्होंने कहा, "ठीक ही है। आप शहर चल रहे हैं?"

महापंडित ने कहा, "जी आप भी चलिए।" और दोनों जन. पोस्ट ऑफिस तक शायद पहुँचे थे कि महापंडित तेजी से लौटते दिखे। लंबा, स्वस्थ शरीर, विशाल मस्तक और साधारण सफेद कुर्ता-पाजामा। अदम्य स्फूर्ति थी, उस व्यक्ति में। मैंने आगे बढ़कर पूछा, "कुछ छूट गया है, आपका?"

"नहीं, पंडित रामअवधजी को प्रणाम करना भूल गया था।"

हम सन्न हो गए। गोष्ठी समाप्त होते ही सबने डॉ. रामअवध

जी को प्रणाम किया था। दरवाजे से ही महापंडित ने कहा, "द्विवेदीजी, क्षमा कीजिएगा, मैं जल्दी में चला गया।" डॉ. रामअवध द्विवेदी के चेहरे पर अजीब किस्म का प्रकाश छा गया। वे उठे और महापंडित ने उन्हें गले लगा लिया। तब तक डॉ. रामअवध द्विवेदी को काशी विश्वविद्यालय से नेत्रहीन होने के कारण निकाला नहीं गया था। वे विश्वविद्यालय के न्यू एफ/7 बंगले में रहा करते थे।

उस दिन हम सब देर तक खड़े रहे। वे फिर सबको प्रणाम करते हुए आगे बढ़ने लगे। साहित्य के इन मनीषियों के आज के संगम से अभिभूत था मैं। अभिभूत होना, मेरे मन का सहज सत्य है।

सीधा परिचय मेरा राहुलजी से कभी नहीं हुआ। बचपन में अपने परिचित माहेश्वरी के कमरे में एक पुस्तक 'धुमक्कड़शास्त्र' देखी थी। शायद पहली ऐसी पुस्तक थी जिसे रात जागकर पढ़ गया था। उनकी पुस्तक ने मेरे मन में धुमक्कड़ी का प्रवाह पैदा कर दिया था लेकिन साहस मुझमें अभी न था।

राहुलजी को मैंने पहले-पहल पत्र लिखा, "मैं घूमना चाहता हूँ और लौटकर काशी विद्यापीठ से 'शास्त्री' (बी.ए.) पास करूँगा।" राहुलजी तब हार्नक्लिप, हैपी वैली, मसूरी में रहा करते थे।

राहुलजी को उत्तर मिला—अजीब टेढ़े-मेढ़े अक्षर, लेकिन अदम्य शक्ति थी उनमें। मेरे भटकते हुए मन को उस पत्र से एक निश्चित दिशा मिली। ठाकुर प्रसादजी ने मुझसे कभी कहा, "अभी तुम्हारे हाथ छोटे हैं। छोटे हाथों में अगर विशाल भंडार भी मिल जाए, तो भी दो-चार दाने ही बांध सकोगे।" राहुलजी ने लिखा था, "छोटे हाथ भी हाथ ही हैं।" मैं आज इस वाक्य को कहीं अधिक गंभीरतापूर्वक समझ सकता हूँ। मेरे जैसे असंख्य व्यक्तियों को राहुलजी ने बचपन से ही विश्वासी बनाया है।

विद्यापीठ में मैं 'स्टूडेंट फ़ंडेशन' का एक सक्रिय सदस्य था और 'प्रगतिशील लेखक संघ' का सहायक मंत्री। गोष्ठियों के लिए, काशी के नए से नए लेखकों से मिलता रहता था।

खिसियानी हंसी हंसते हुए प्रगतिवादियों को कोसने वाले पंडित आज भी देश में हैं और कुछ समय तक रहेंगे, जब तक वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास नहीं हो जाएगा। राहुलजी ने उसी दृष्टिकोण का इस देश में बीज बोया। जो भी एक बार उनके परिचय में आया, उसमें राहुलजी ने अपने स्पर्श से, सहज स्नेह से, ऊंचा उठने की क्षमता पैदा की।

काशी का पूरा वातावरण जो आज छिन्न-भिन्न हो चुका है, कभी नया या आधुनिक और प्रगतिशील था। कहीं-न-कहीं सभी राहुलजी से प्रेरणा ले रहे थे। त्रिलोचन, ठाकुरप्रसाद सिंह, नामवर सिंह, स्व. जतशंखधर, प्रो. चंद्रबली सिंह, विद्यासागर नौटियाल, स्व. शिवमूर्ति मिश्रशिव, स्व. लालजी सिंह, डॉ. मंगलनाथ सिंह,

स्व. परमेश्वरीलाल आदि को मैं निकट से जानता हूँ। उन लोगों के हज़ारों प्रसंग मेरे मन में हैं।

‘वैज्ञानिक भौतिकवाद’ पुस्तक में स्व. जगत शंखधर सर्वपल्ली राधाकृष्णन की आलोचना की शैली को ग़लत मानते थे। वे कहा करते थे, “एक दार्शनिक का उत्तर इतना हल्का नहीं होना चाहिए, जितना राहुलजी का है।”

मुझे उस मार्क्सवादी क्लब की गोष्ठी की याद है जिसका संयोजक मैं था। जगतजी उसके अध्यक्ष थे। ‘सरस्वती प्रेस’ गोदौलिया पर ‘मार्क्सवादी क्लब’ की वह पहली गोष्ठी थी। बैजनाथ सिंह ‘विनोद’ उस गोष्ठी के अध्यक्ष थे। महापंडित को ‘मार्क्सवाद और बौद्ध दर्शन’ विषय मैंने दिया था। बिना किसी भूमिका के राहुलजी ने उस दिन मार्क्सवाद और बौद्ध दर्शन की मूलभूत स्थापनाओं का जिक्र किया था और अंत में कहा था, “बौद्ध-दर्शन न मार्क्सवाद का पूरक है, न मार्क्सवाद बौद्ध-दर्शन का। हर युग की अपनी बातें हुआ करती हैं, जिन्हें समझना उस युग के विचारकों का कार्य है। मार्क्सवाद हमारे समय का दर्शन है जिसने आधी दुनिया को बदल दिया है।”

काशी विश्वविद्यालय के ‘छात्र यूनियन’ में उस बार स्टूडेंट फ़ैडरेशन की विजय हुई थी। सन् 1858 में विरोध के बावजूद विद्यासागर नौटियाल ने राहुलजी को आमंत्रित किया था।

स्वतंत्र विचारकों के लिए हमारे देश में आज भी विश्वविद्यालय के दरवाज़े बंद हैं। इसमें विश्वविद्यालय के छात्रों का दोष नहीं है। दृष्टिदोष आज़ादी के बाद साम्राज्यवादी देशों के नकली शिक्षाविदों और नौकरशाही समझ का है। आज़ादी के आंदोलन में गांधीजी और मालवीयजी राष्ट्रीय शिक्षा की जातीय चेतना का बीज बो रहे थे। उसी समय कम्युनिस्ट रुस्तम सैटिन यहां पढ़ रहे थे। स्व. रामनारायण मिश्र ने आज़ादी के लिए संघर्षशील एशियाई देशों का शिक्षा सम्मेलन काशी में आयोजित किया था। सर्वपल्ली राधाकृष्णन उसके सभापति थे। आज नकली शिक्षा के प्रसार-प्रचार की बदौलत पड़ोस के देशों से ही हमारा नाता टूट गया है। नकली शिक्षाविद समझते हैं, डिग्री हासिल करने वाला तिकड़मी होगा ही। ज्ञानी होने का वह सांग रचा करता है लेकिन युग का अलग मानदंड होता है और उसके परीक्षक विश्वविद्यालय के अध्यापक या चलाक नौकरशाह नहीं हुआ करते।

राहुलजी की लंबी यात्राएं और गहन अध्ययन जन-विश्वविद्यालय की ही देन हैं। उस दिन शिक्षा-संचालकों के मन में यह संशय था कि राहुलजी तेज़ और सरकार-विरोधी भाषण यहां भी देंगे लेकिन राहुलजी का उस दिन का भाषण छात्र यूनियन के लिए मैं एक अमूल्य मंत्र मानता हूँ। मंत्र-द्रष्टा की तरह, उन्होंने हर विद्यार्थी को जैसे अपने मन के दबाव को उतार फेंकने के लिए एक सूत्र दे दिया था। उन्होंने बुद्ध का दृष्टांत दिया था : जिसका अर्थ था, “ज्ञानी वह नहीं है जो ज्ञान को ढोता है बोझ की तरह। ज्ञान एक दृष्टि है, जिससे आगे बढ़ा जा सकता है।” मैंने देखा था एक घंटे के भाषण में हर एक विद्यार्थी के मन पर राहुलजी छाए हुए थे।

इधर देश के उत्तर-पूर्वी हिस्से और विदेश में इंग्लैंड और अमरीका की यात्रा मैंने की है। अमरीका और इंग्लैंड में उसे बड़ा लेखक माना जाता है जो भारत को गिराता है या उसकी हंसी उड़ाता है। इंग्लैंड से राहुलजी को अमरीका जाने का मौका भी मिला था। वह उस समय से ही अमरीका जाने के खिलाफ़ रहे। उनके मन में भारत की संस्कृति, इतिहास, कला और विज्ञान पर गर्व था। देश में उत्तर-पूर्व का अध्ययन अभी तक नहीं हुआ है, जब होगा तो राहुलजी के मध्य

एशिया के इतिहास से नई इतिहास-दृष्टि का विकास होगा। हिमालय के देशों पर तो राहुलजी जीवित विश्वकोश थे ही। कांगड़ा, मसूरी पर लिखी उनकी परिचय पुस्तकें वहां की संस्कृति और प्रथाओं अकूत खज़ाना है। आज़ाद भारत के सरकारी इतिहास और संस्कृत के जाने-माने लोगों की वहां की जनता से कोई निकट का नाता नहीं है। राहुलजी उनके अपने आदमी थे। अपनी परिचय-पुस्तकों में उन्होंने बनतू नौकरशाहों की ख़बर ली है, पर अपने पाठकों से यह कहा है, “आगे कोई इससे अच्छा काम करेगा। उस समय तक आप इससे काम लीजिए और बाद में इसे भूल जाइयेगा।” यह एक जनता के हित और मार्क्सवादी विचारक की आशावादी दृष्टि है जिसे यह विश्वास है कि उसका प्रारंभ किया हुआ प्रगतिशील कार्य भविष्य में और विकसित होगा।

इधर कुछ बुद्धिजीवी राहुलजी के चरित्र की बातों को अनेक रंगीन कहानियों के रूप में सुनाया करते हैं— उसमें नागार्जुन और गुणाकर मुले जैसे लोग भी हैं। ऐसे लोग आज़ादी के बाद महानगरों में बड़े हैं जिनकी लड़कियां कमज़ोरी रही हैं। अगर वे सेठाश्रयी पत्र के संपादक हुए तो वह प्रोत्साहन के नाम पर उन्हें इस्तेमाल करते हैं। अगर अधिकारी हुए तो उन्नति का प्रलोभन देकर वह लड़की पर अपनी कृपा-दृष्टि फेरते हैं। पुरुष-समाज में नारी की हीनता या निंदा का कोई प्रसंग मैंने नहीं पढ़ा है। कमलाजी उनकी टाइपिस्ट थीं, आज वह विदुषी हैं। अपनी पुस्तकों में राहुलजी ने कैसी-कैसी स्थितियों से नारी को क्या बनाया, इस पर कम खोज की गई है।

इलाहाबाद में निरालाजी अस्वस्थ थे। उनका शरीर ढल चुका था। राहुलजी उनसे मिले थे। मिलने के साथ ही उन्होंने राहुलजी के स्वास्थ्य पर प्रश्न किया था। राहुलजी ने अंत में लोगों से कहा था, “निरालाजी के लिए पहाड़ पर खुला बंगला होना चाहिए और एक सहयोगी महिला, जो उनके प्रति सदय ही न हो, स्वस्थ भी हो।”

हर व्यक्ति से राहुलजी ने अपने मत की सराहना कभी नहीं चाही। यों हर व्यक्ति के साथ चलने की नीति ग़लत होती है। ‘बिड़ला’ और ‘होरी’ इजारादारसेठ और बहुसंख्यक किसानों में किसी एक की ही नैतिकता को सही कहा जा सकता है। वो शोषण और शोषित दोनों के कंधे पर हाथ रखकर सहूलियत की बात करते हैं, राहुलजी उनके विरुद्ध रहे हैं। और हर मोड़ पर वे वैज्ञानिक चिंतक हैं। संस्थाओं में, राजनीति में, उस राजनीति में जिसमें अपना जीवन उन्होंने लगा दिया उस कम्युनिस्ट पार्टी से भाषा की नीति पर वे अलग हट गए या हटाए गए लेकिन उनके दृष्टिकोण में दलविहीन आज लेखकों-सा राजनैतिक भटकाने कभी नहीं आया।

हिंदू महासभा के करपात्रीजी का बृहद ग्रंथ है ‘मार्क्सवाद और रामराज्य’। वह मार्क्सवाद के विरुद्ध थे। राहुलजी का ऐतिहासिक स्तर पर इस ग्रंथ का उत्तर है। यह सब ऐतिहासिक सत्य है और इतिहास के प्रति राहुलजी ने कभी अन्याय बर्दाश्त नहीं किया। वह चाहे डॉ. राधाकृष्णन के ‘अध्यात्म’ का या करपात्रीजी के ‘हिंदुत्व’ या संपूर्णानंदजी के ‘भारतीय समाजवाद’ का या आज़ादी के बाद सत्ता में नेहरू परिवार की कुलीनता का हो। विचार के स्तर पर वे अपने विरोधी के सामने तनकर आते थे और उसका उत्तर एक मार्क्सवादी की तरह सामाजिक स्तर पर देते थे। 1949 की बात है। मैं राजनीति में सक्रिय कार्य करने लगा था। कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यों में भाग लेता था। नगर का कोतवाल उस समय जनसंघी था। उसने गोलवलकर के विरुद्ध हमारे जनवादी संयुक्त मोर्चे के जुलूस पर डंडे चलवाए और 100 व्यक्तियों को लारी में टूसकर जेल भिजवा दिया। जनवादी संयुक्त मोर्चे में हमारे साथ कांग्रेसी लालजीसिंह और गीतकार राहगीर, सोशलिस्ट,

स्व. विजयदेवनारायण साही और मेरे जैसे कम्युनिस्ट थे।

मैंने राहुलजी को एक पत्र लिखा था। काशी विद्यापीठ में 'शास्त्री' के लिए मैं 'नागाओं की संस्कृति' पर शोध-कार्य करना चाहता था। 'विश्वकोश' और दूसरी समाजविज्ञान की पुस्तकें मैं देख चुका था। असम जाकर मैं इस विषय में कुछ कार्य करना चाहता था, लेकिन मुझे उपयुक्त व्यक्ति नहीं मिला था जिससे सलाह लेता। प्रोफेसर राजाराम शास्त्री से इस विषय पर मुझे स्पष्ट दृष्टि मिली। मैंने राहुलजी को पत्र लिखा और तीन-चार दिन के अंदर राहुलजी का उत्तर मुझे मिल गया। उसी समय मेरे नाना की मौत भी हुई थी।

हार्न क्लिप, हैपीवैली, मसूरी, 25-2-53

प्रिय विष्णुचंद्रजी,

पत्र मिला। श्रद्धेय रामनारायणजी का निधन तुम्हारे ही लिए नहीं, सभी हिंदीभाषियों के लिए भारी क्षति का काम हुआ।

आप थीसिस के संबंध में आसाम भी हो आइये। 'शास्त्री' करके तब बड़े प्रोग्राम को रखना अच्छा रहेगा। आसाम के बारे में मुझे बहुत कम मालूम होगा। गोहाटी में पहुंचकर वहां की लाइब्रेरी और असमिया साहित्य संस्था से पता चल जाएगा। वहां पढ़ने के लिए पुस्तकें भी मिल जाएंगी।

शिवास्ते सनतु पंधानः

राहुल

उस दिन दशाश्वमेध में एक संस्कृत पंडित राहुलजी से मिले थे। राहुलजी से वह अपने विषय पर बातचीत कर रहे थे। राहुलजी ने कहा था, "आज से पांच-छह वर्ष पूर्व भी आपने यही कहा था। आदमी को बहुत कुछ करना है। समय की गति हमसे तेज है। आपने जो सोचा है, इतने वर्षों में, उसे लोगों के सामने लाइए। शाश्वत रचना का इंतजार करना कोरी कल्पना है।" मुझे याद है, दक्षिण की यात्रा में एक विद्यार्थी मुझसे मिला था। वह हिंदी में रिसर्च कर रहा था। रिसर्च के विषय में उसने हिंदी के कई विद्वानों को पत्र लिखे थे। राहुलजी से वह मिला था। उन्होंने उस व्यक्ति को निर्देशन तो किया ही, कुछ ऐसे अध्यापकों के नाम पत्र भी लिखे, जो उसके विषय में उसकी सहायता कर सकते थे।

'कवि' मासिक पत्र मैंने 1957 में निकाला था। मां तब जीवित थीं। मैंने कुछ रुपये 'कवि' के लिए उनसे मांगे थे। पिता की मौत के बाद वह खुद अपने को असहाय मानने लगी थीं। मुझे याद है उनके पास सोने की एकमात्र कर्धनी थी जो पिता की जेल यात्रा के समय नानी की प्रति-उत्पन्न मति के कारण बच गई थी। मां ने दूसरे दिन वह कर्धनी बेच दी थी। उस धन का मां ने चार हिस्सा किया था। एक हिस्से से 'कवि' के कुछ अंक छपे थे। मुझे 'कवि' पत्र पर राहुलजी का भी एक पत्र मिला था। पत्र मैं यहां दे रहा हूँ।

हार्न क्लिप, हैपी वैली, मसूरी, 20-8-57

प्रिय शर्मा जी,

'कवि' के पांच अंक मिले। कविताओं को देखकर खुशी हुई ही, साथ ही यह जानकर और भी प्रसन्नता हुई, कि पत्र का मूल्य इतना रखा गया है जिसका भार पाठक आसानी से वहन कर सकता है। हमारी कविताओं के लिए ऐसे एक पत्र की बड़ी आवश्यकता थी।

मेरी हार्दिक कामना है, कि पत्र दीर्घायु हो।

आपका,

राहुल

'पाठक की प्रसन्नता' और 'हिंदी का भविष्य' हर समय राहुलजी के मन में रहा है। मेरठ की, उस वृद्ध महिला के पास काफी समय तक बैठकर राहुलजी ने 'आदि हिंदी की कहानियां और गीत' की लोक सामग्री का संग्रह किया था। यह कार्य तो उन भाषाविदों का था जो हिंदी की भाषा-समितियों के सिर-मोर हैं।

मेरे एक मित्र ने बताया है, हमारा 'विधान' अंग्रेजी में तैयार हो चुका था। टंडनजी ने उसके हिंदी अनुवाद की मांग संसद में रखी थी। असमर्थता जाहिर करते हुए बहुत से अधिकारियों ने अनुवाद के लिए चार-पांच साल का समय चाहा था। टंडनजी ने यह कार्य अपने ऊपर लिया और राहुलजी को इसकी जिम्मेदारी सौंप दी। राहुलजी ने थोड़े समय के अंदर ही उस बृहद कार्य को समाप्त कर दिया। इस कार्य में डॉ. प्रभाकर माचवे और डॉ. विद्यानिवास मिथ से राहुलजी ने सहयोग लिया था। इसी तरह वैज्ञानिक शब्दावली हिंदी में बने, वह देश व्यापी हो, उसका स्तर जातीय हो, इस उद्देश्य से वह लंबे समय तक, निस्वार्थ भाव से, देश में कार्य करते रहे थे। इस तरह 'हिंदी समिति' के 'पालि भाषा, और साहित्य का इतिहास', 'साहित्य अकादेमी' के लिए 'तिब्बती कोश', 'बिहार राष्ट्रभाषा-परिषद्' के लिए 'दोहा-कोष' जैसे कार्य प्रस्तुत हैं, जिसे ढलती उम्र में, लेकिन अद्यतन सामग्रियों से संयोजित कर, राहुलजी हमें सौंप गए हैं।

तेलंगाना आंदोलन का इतिहास कई नेताओं—सुंदरइया, राजेश्वर राव ने लिखा है। उसका विस्तृत ब्यौरा राहुलजी ने अपनी जीवन-यात्रा के दूसरे खंड में दिया है। वह बिहार...संयुक्त प्रांत की किसान सभा के तब संस्थापन नेता थे। उन पर जमींदारों ने लाठियां बरसाई थीं। रामविलासजी ने उस प्रसंग की याद नई कविता के प्रसंग में इधर की है।

दिल्ली में राहुलजी को अंतिम बार देखा था। मास्को जाने की वे तैयारी में थे। तब यहां 'कांस्टीट्यूशन क्लब' था। यह पूरनचंद जोशी का घर था। एक बड़ा कमरा। राहुलजी कुर्सी पर बैठे थे। सामने मेज पर थाली में फूलके और लौकी की सब्जी थी। राहुलजी की आंखें हम लोगों पर अटकी थीं। उनमें तरलता थी। जरा से स्पर्श से आंसू फूट जाते थे। साथी स्व. सच्चिदा सेवा-शुश्रूषा में कई हफ्तों से व्यस्त थे। राहुलजी का पासपोर्ट बन चुका था।

उस दिन नागार्जुन, मुद्राराक्षस, कांतिमोहन और मैं साथ ही थे। खाना खाने के बाद, कमरे के बीच में एक बड़े पलंग पर राहुलजी को लिटा दिया गया था। किसी भी पुराने परिचित का नाम सुनते ही वे फूट-फूटकर रोने लगते थे। उनके तकिए के बगल में दो पुस्तकें थीं। अक्सर आने वालों से वे पूछते थे, "क्या है?" मैंने उस दिन 'जीवन-यात्रा' के कुछ अंश पढ़कर उन्हें सुनाए थे। सुनते हुए, कहीं दूर, उनकी आंखें अटक गई थीं। अपने ही भीतर, जैसे टार्च जलाकर, वे कुछ खोज रहे थे। नागार्जुन उनके आंसू पोंछ रहे थे। बच्चे की तरह उस वृद्ध-शिशु ने नागार्जुन के मस्तक पर चुंबन आंका था। उन्हें जैसे सब भूल चुका था। केवल अपने दो बच्चों का नाम वह पूछते थे और दो बार जैसे होंठों से चुमकारते हुए उन बच्चों का नाम दोहरा लिया करते थे। कमलाजी के डर से वह अपने बड़े लड़के ईगोर का नाम होंठों पर नहीं लाते थे।

हमारे मन में असंतोष और पीड़ा थी लेकिन हममें से कोई अधिक देर तक उनके सामने बैठने का साहस नहीं कर सका। मैं, नागार्जुनजी के साथ बाहर आया। नागार्जुनजी बाहर उद्विग्न-से खड़े थे। रूस के उनके पुत्र ईगोर राहुलोविच की नागार्जुनजी सराहना कर रहे थे। उन्होंने कहा, "ईगोर ने चाचा नेहरू को और खुश्चेव साहब को पत्र लिखा था और उसके पत्र पर ही राहुलजी की व्यवस्था इतनी जल्द हो सकी थी।

पृष्ठ 48 पर जारी

‘क्या करें’ : राहुल सांकृत्यायन

नरेंद्र शुक्ल

ऐसे में जब द्वितीय विश्व युद्ध की बिसात बिछ चुकी थी और भारत को ज़बर्दस्ती घसीटा जाना तय लग रहा था, भारतीय राजनैतिक कार्यकर्ताओं विशेषकर कांग्रेस के अग्रणी नेताओं के बीच युद्ध में ब्रिटेन का साथ देने अथवा न देने के मसले पर गहरे मतभेद थे। यह स्वाभाविक भी था क्योंकि भारत के लोग प्रथम विश्व युद्ध के दौरान ब्रिटेन की सहायता के बावजूद कुछ पा न सकने से मिले घाव को अभी भुला नहीं पाए थे किंतु फिर भी भारत को युद्ध में शामिल होने की घोषणा पर, युद्ध के दौरान करना क्या है, कुछ तय नहीं था। दूसरी तरफ़ युद्ध की विभीषिका के भय के चलते आम जनमानस के भीतर असुरक्षा और निराशा का भाव तो था ही। कुल मिलाकर एक ऐसी किंकर्तव्यविमूढ़ता की स्थिति थी, जिसमें सबके सामने एक ही प्रश्न था, कि ऐसी स्थिति में ‘क्या करें’?

समाज और राजनीति को इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए मई, 1939 ई. में महान साहित्यकार राहुल सांकृत्यायन की एक पुस्तक प्रकाशित हुई, जिसका शीर्षक भी यही था, ‘क्या करें’। नागरी प्रेस प्रयाग में मुद्रित एवं साम्यवादी पुस्तक प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद के द्वारा प्रकाशित, एक रुपये मूल्य की इस पुस्तक के पहले संस्करण में 1500 प्रतियां मुद्रित की गई थीं। यह पुस्तक वास्तव में, राहुल सांकृत्यायन के चुने हुए राजनैतिक, सामाजिक, साहित्यिक निबंधों का संग्रह थी। पुस्तक ‘क्या करें’ के पहले ही निबंध ‘शोषक और शोषित’ में ध्यान आकर्षित किया गया था कि कैसे, 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में आम जनता ने बढ़-चढ़कर भाग लिया था किंतु अंततः शोषित वर्ग जो अधिकतर शत्रुओं के साथ था, ही लाभ में रहा। उसकी सेवाओं के बदले उसे जागीरों, उपाधियों और पुरस्कारों से नवाजा गया। राहुल ने तुलनात्मक रूप से तत्कालीन सरकारों को लक्ष्य करते हुए ‘सच्चे स्वराज’ की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहा। उन्होंने लिखा कि :

“जब कि, कामगार का, अपने काम का प्रतिफल पाने का पूरा हक है, वे इससे शोषकों के द्वारा वंचित किए जाते रहे हैं।...आम आदमी का हित और सच्चा स्वराज तब तक नहीं आ सकता जब तक ज़मींदार, सूदखोर, और पूंजीवादी शोषक समाज अपने बने-बनाए ढर्रे से अलग नहीं होता।”

इस प्रकार से इस निबंध में राहुल जहां एक ओर आम कामगार, मजदूर को उसके काम का हक दिलाने के लिए आवाज बुलंद कर रहे



थे, वहीं उनका संकेत ब्रिटिश और भारतीय शासक/पूंजीपति गठजोड़ की तरफ़ भी था, जिनसे पार पाए बिना स्वराज को पाना असंभव था। राहुल के लिए भारत की स्वतंत्रता की लड़ाई केवल राजनैतिक स्वतंत्रता की प्राप्ति तक ही सीमित नहीं थी, उनके लिए ऐसी राजनैतिक स्वतंत्रता बिना सामाजिक-आर्थिक न्याय के बिल्कुल अधूरी थी। और यही वह लोग थे, जिनकी एक जुटता के सहारे स्वतंत्रता और सच्चे स्वराज के इस युद्ध को लड़ा जा सकता था।

अपने दूसरे निबंध ‘हमारी पराधीनता’ में राहुल सांकृत्यायन इस बात से साफ़ इकार करते हैं कि, अंग्रेज़ भारत में पिछले 200 वर्षों से किसी परोपकार की मंशा से शासन कर रहे हैं।



बंबई अधिवेशन में

राहुल इस बात पर भी दुःख प्रकट करते हैं कि, भारतीय नेता कई बार इटली, जर्मनी और जापान के विरुद्ध बोलते रहते हैं जबकि सच्चाई यह है कि, जहां तक भारतीयों का संबंध है, उनका इस दुनिया में एक ही शत्रु है। वह अकेला शत्रु, वही ब्रिटेन है, जिसने हमारी स्वतंत्रता छीन कर हमें तुच्छ बना दिया है। राहुल ने रणनीतिक तौर पर जर्मनी और इटली को भारत की स्वतंत्रता के लिए सहज सहयोगी मानते हुए लिखा कि ये दोनों देश तो ब्रिटिश साम्राज्य को कमजोर बनाने में ही लगे हुए हैं। वहीं राहुल का विचार था कि, ‘जापान जल्दी ही चीन के येन्नान प्रांत को जीतकर आसाम के सीमावर्ती इलाकों तक पहुंच सकता है। कुछ ही समय में यह तिब्बत से होता हुआ सादिया, मानसरोवर से होता हुआ लद्दाख तक फैल सकता है। लगभग 2000 मील की सीमा पर जापानियों का इस तरह से फैल जाना भारत से ज्यादा ब्रिटेन की चिंता का विषय है। भारत के लिए तो यह खुशी का विषय है कि, वह शक्ति जिसने

उन्हें 200 वर्षों तक गुलाम बना कर रखा वह आज खुद ब खुद पंगु होती जा रही है। राहुल ने भारतीयों को पुनः चेताया कि,

“अंग्रेज़ भारतीयों को (इस युद्ध में) अपने साथ घसीटना चाहते हैं। यह निश्चित है कि, भारत कभी अपनी इच्छा से अंग्रेज़ों के साथ नहीं आएगा। अंग्रेज़ों का यह दुर्भाग्य भारतीयों के लिए संतुष्टि का विषय है। अंग्रेज़ों की बरबादी भारतीयों के लिए आशा का संदेश है। अंग्रेज़ों को कुछ राजाओं और मंत्रियों के साथ के भ्रम में नहीं रहना चाहिए। शत्रु के केवल दो बमों के प्रहार से ही इनके होश ठिकाने आ

पृष्ठ 26 पर जारी

राहुल सांकृत्यायन की महायात्राएं

शुभांगी श्रीवास्तव

राहुल सांकृत्यायन विश्व के सर्वोत्तम घुमक्कड़ों में से एक थे। उनके लिए पूरा विश्व एक आंगन था। विद्वानों ने उनकी तुलना विख्यात यात्रियों ह्वेनसांग तथा फाह्यान आदि से की है। रामप्रकाश अग्रवाल ने 'भारतीय मेधा के ज्योतिर्मय प्रतीक' नामक लेख में विश्लेषित किया है कि किस प्रेरणा से उन्होंने पांच-पांच बार तिब्बत, सोवियत भूमि और लंका की यात्रा की। छह मास युरोप में रहें, एशिया को छान डाला। कोरिया, मंचूरिया, ईरान, अफगानिस्तान, जापान, नेपाल वह किस तलाश में गए, हिमालय में क्या देख रहे थे, बट्टी-कंदार-कुमायू-गढ़वाल में, केरल, कर्नाटक और मद्रास से कश्मीर और लद्दाख में क्यों पहुंचे थे? क्या बेचैनी थी उन्हें? ऐसा अन्वेषण का उन्माद कहां देखने को मिलता है? बुद्ध में, शंकर में, भर्तृहरि में, भगीरथ में, राहुल में! यह थी प्रतिभा की बेचैनी, मेधा का उन्माद, अटूट प्यास। कोलंबस, शंकर, बुद्ध ने भूगोल-इतिहास को टटोलकर दर्शन का दीप जलाया था।



राहुल सांकृत्यायन के लेखन की मूल प्रेरणा यात्रा-प्रियता ही है। राहुल की यात्राओं ने उनको साहित्य की अन्य विधाओं के लिए पर्याप्त प्रेरणा और पाथेय तो प्रदान किया ही, साथ ही उन यात्राओं पर केंद्रित साहित्य भी अत्यंत मूल्यवान है।

अत्यंत प्रारंभ से यायावरी में रम जाने वाले राहुल ने जीवन-पर्यंत घुमक्कड़ी को संपूर्ण जीवन-दर्शन के रूप में अंगीकार किया। 'घुमक्कड़ शास्त्र' के रचयिता राहुल ने संपूर्ण विश्व का भ्रमण करते हुए विशेषकर समाजवादी राष्ट्र के विषय में जो वर्णन प्रदान किए हैं वे अमूल्य हैं। अगणित-अलक्षित-उपेक्षित स्थलों का दिग्दर्शन भी उनके यात्रा साहित्य में हुआ है। उनकी सोदेश्य यात्राएं मनुष्यता की विलुप्त अथवा उदासीन कड़ियों को सचेत करने का प्रगतिशील उपक्रम है। गति राहुल के जीवन और साहित्य का मूलमंत्र है। यायावरी उनके लिए जीवन-यात्रा के समान है। संपूर्ण भारतीय साहित्य में राहुल जैसा यायावर साहित्यकार दुर्लभ है। इस यायावरी ने उनको अनुभवों का अक्षय भंडार प्रदान किया। वे जीवनभर निरंतर चलते रहे। केवल यात्री के रूप में देश-देशांतर में ही नहीं अपितु साहित्य, राजनीति, विचार तथा भाषाओं के प्रदेश में भी।

जो सतत् घुमक्कड़ है और नए-नए प्रदेशों में घूमता रहता है, उसके लिए तो यात्राएं ही इतनी सामग्री दे सकती हैं जिस पर लिखने के लिए सारा जीवन पर्याप्त नहीं हो सकता। राहुल के साथ यह अक्षरशः घटित हुआ है।

राहुल ने यायावर वृत्ति को अनादि सनातन धर्म घोषित करते हुए लिखा है कि मनुष्य स्थावर वृक्ष नहीं है, वह जंगम प्राणी है। चलना मनुष्य का धर्म है, जिसने इसे छोड़ा वह मनुष्य होने का अधिकारी नहीं है। घुमक्कड़ी को दुनिया की सर्वश्रेष्ठ वस्तु और समाज की सर्वोत्तम प्रवृत्ति भी उन्होंने घोषित किया है।

राहुल ने विश्व-यात्री के रूप में जो कीर्तिमान स्थापित किए हैं उनका उल्लंघन तो दूर उनके निकट पहुंचने की कल्पना भी रोमांचित

कर देती है। इसके साथ उनकी यात्राएं कभी भी स्वांतः सुखाय का साधन नहीं बनीं। प्रगतिशील जीवन-दृष्टि के धारक राहुल सांकृत्यायन ने अपनी समस्त यात्राओं में मानवीय सभ्यता और संस्कृति के विस्मृत पक्षों को अध्ययन के लिए विश्व-समुदाय के समक्ष प्रस्तुत किया है। जब एक संवेदनशील कलाकार भ्रमण के लिए निकलता है तो सतह पर के प्रलोभनों को छोड़कर सतह को भेदकर इसकी आत्मा के भीतर प्रवेश करता है। पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी के अनुसार, "राहुलजी ने किसी विश्वविद्यालय में शिक्षा नहीं पाई पर साथ ही यह कहना उचित होगा कि उन्होंने दरअसल विश्व के विद्यालय में आखें खोलकर घूमते हुए खूब शिक्षा प्राप्त की है। 1907 से 1963 तक उन्होंने भ्रमण को अपना धर्म बनाया। वह लंका, तिब्बत रूस, इंग्लैंड, जर्मनी, नेपाल, लद्दाख, जापान, कोरिया, मंचूरिया, ईरान और चीन जैसे देशों में गए। भारत के समस्त प्रदेशों की यात्राएं तो उन्होंने अनेक बार की। वे भारत के महान यात्री थे। फाह्यान और ह्वेनसांग की तुलना में उनके यायावर प्रयास श्रेष्ठतर ही सिद्ध होते हैं। विशेषकर तिब्बत की चार बार की यात्राओं से उन्होंने बौद्ध धर्म तथा संस्कृत भाषा की जो सेवा की है वह अप्रतिम है। वह अपनी यात्राओं को अपने साहित्य-सृजन का मूलाधार घोषित करते हैं।

तिब्बत के भोट समुदाय के विषय में संपूर्ण समाजशास्त्र राहुल ने संभवतः प्रथम बार प्रस्तुत किया है। अपनी रूढ़िग्रस्तता के पश्चात् भी उनके मध्य कला, संगीत, संस्कृति के उज्ज्वल विस्तार को लेखन ने चिन्हित किया है। तिब्बत की राजनैतिक व्यवस्था, स्थानीय प्रबंधन क्षमता, ल्हासा में शासकीय दमन तथा नेपाल की सामाजिक व्यवस्था पर प्रसंगात् दृष्टिपात है। उत्सव, सामूहिक नृत्य, रामलीला सदृश नाटक तथा दीपमाला सम्मान का उन्होंने उल्लेख किया है। कला-कुशलता का परिचय संस्क्या के फोटोड महल प्रसंग में उन्होंने लिखा है, "तिब्बती लोगों के खून में कला मिली हुई है। इसलिए वह बड़ी सुरुचिपूर्वक मकानों को सजाते हैं। दीवारों पर रंग और बेलबूटे का काम आलमारियों के ऊपर भी कारू कार्य और रंग, बर्तन चाहे मिट्टी के हों या धातु के, उनमें भी सौंदर्य बैठने-लेटने के आसन और सामने रखी जाने वाली छोटी चाय की चौकियां भी नयनाभिराम।" इस प्रकार राहुल ने यात्रा के मध्य आने वाले स्थलों की सामाजिकता को पूरी तरह सम्मान देते हुए प्रस्तुत किया है। जीवन को उसकी समग्रता में राहुल ने ग्रहण किया है।

राहुल के यात्रा-वृत्तांत में प्रकृति के अप्रतिम चित्र प्राप्त होते हैं। विशेषकर हिमानी प्रकृति-हिमाच्छादित शृंग, वनस्पति तथा उपादान पर तो उनके साहित्य से कई उत्कृष्ट प्रसंग चुने जा सकते हैं। कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर से बातचीत करते हुए राहुल ने पर्वतीय सौंदर्य को अपना सबसे बड़ा प्रेरणास्रोत कहा था। "एक दिन घुमक्कड़ी की बातचीत के बीचोंबीच मैंने उन्हें टोका, आप घूमे खूब हैं और आपने संसार के अनेक सौंदर्य केंद्र देखे हैं। आपको संसार में सबसे सुंदर क्या लगता है?" उनका उत्तर था, "हिम (बर्फ) मुझे बहुत सुंदर लगता है। हिम

पड़ा हो, दूर तक हिम ही हिम और बीच-बीच में कहीं-कहीं कुछ और बसा। “और दूसरे नंबर पर?” मैंने उन्हें उकसाया तो बोले, “देवदारु बहुत सुंदर लगता है।” इस प्रकार राहुल के यात्रा साहित्य में प्रकृति के अनूठे चित्र सुरक्षित हैं।

नामवर सिंह के अनुसार, पुनर्जन्म में विश्वास न होने के कारण राहुल प्रत्येक पल को अंतिम सीमा तक निचोड़ लेते थे। उनके मन में घुमक्कड़ी की वृत्ति उत्पन्न हुई तो अपनी सोद्देश्य जीवन-दृष्टि से राहुल ने उसे भी सर्वोपयोगी बना दिया। निरुद्देश्य भ्रमण का अर्थ वह ‘घर से गुम हो जाना’ मानते थे। भ्रमण करते हुए राहुल ने प्रत्येक वस्तु-व्यक्ति-स्थान से कुछ-न-कुछ ग्रहण किया। प्रत्येक व्यक्ति एक विशिष्ट परिवेश का निर्माता होता है। अपनी इस छवि से वह प्रत्यक्षतः-अप्रत्यक्षतः दूसरों को प्रभावित करता है।

राहुल पर केंद्रित कविता ‘एक घुमंत आदमी का हलफनामा’ की ये पंक्तियां उनके यात्रा-साहित्य को सार्थक रूप में व्याख्यायित करती हैं-

कठिनाई करे दुर्गम रास्तों पर / चलने का अनुभव

यही है वह संपदा / जो सृजित करता है

वह तिल-तिल तिरोहित होकर अर्थहीन नहीं होती है

उसकी कोई भी यात्रा। □

संपर्क : एन-1/15डी-12, गंगोत्री बिहार कॉलोनी, नगवा लंका, वाराणसी
मो. 8400319933

‘क्या करें’ : राहुल सांकृत्यायन

पृष्ठ 24 से आगे

जाएंगे। भारतीय जनता अब अंग्रेजों के लिए अपना खून, पानी की तरह बहाएगी और वे अब भारतीय नौजवानों को केवल 15 रुपये महीने पर अपने घरों को बचाने अथवा जलियांवाला बाग जैसे कांड करने के लिए नहीं खरीद पाएंगे। भारतीय निहत्थे हैं, जबकि अंग्रेज केवल शस्त्रों की ही भाषा समझते हैं। भारतीय सैन्य विज्ञान से परिचित नहीं हैं जबकि अंग्रेज अपने को सैन्य विशेषज्ञ मानते हैं किंतु भारतीयों के भीतर दासत्व के प्रति अंतहीन घृणा अपनी स्वतंत्रता की चाह तथा उन्हें गुलाम बनाने वालों के प्रति अनंत असंतोष है।...ऐसे समय पर भारत को अपनी स्वतंत्रता के संबंध में सोचना चाहिए... ऑस्ट्रेलिया, जापान के हाथ में जाता है तो जाए।... आज स्थिति यह है कि, अंग्रेज अपनी बहुत बड़ी रकम उत्तर-पश्चिम सीमा की रक्षा में खर्च कर चुके हैं। हम अपने चारों ओर के विश्व से परिचित हैं, और उसमें अपने स्थान से भी। हम अपनी ताकत पहचानते हैं। अब समय आ गया है, जब हमें विश्व में अपनी ताकत और बुद्धिमता के आधार पर अपना स्थान बनाना चाहिए अथवा हमें इस जगह को दूसरे देशों के लिए हमेशा के लिए छोड़कर चले जाने के लिए तैयार रहना चाहिए।”

इस तरह से राहुल की सीधी तजवीज थी कि, विश्व युद्ध के रूप में भारतीयों के पास एक बड़ा मौका हाथ लगा है, जिसे बर्बाद नहीं करना चाहिए। शत्रु के शत्रु मित्र होते हैं, इस सिद्धांत पर आचरण करते हुए ब्रिटेन को कमजोर करने वाली शक्तियों के विरोध में खड़े होने की अपेक्षा ब्रिटेन को कमजोर स्थिति का लाभ उठाने का प्रयास कर अपना पूरा ध्यान और साधन देश की स्वतंत्रता में झोंक देना चाहिए। हालांकि, राहुल की उक्त सलाह का विरोध इस आधार पर किया जा सकता है, कि एक साम्राज्यवादी देश होने के नाते जापान पर कैसे भरोसा किया जा सकता है। इसका उत्तर इसी निबंध में देते हुए राहुल ने कहा कि :

“यह निश्चित है, कि इतने बड़े युद्ध के पश्चात, जापान तुरंत ही भारत पर आक्रमण नहीं कर देगा। हमारे पास खुद को मजबूत कर लेने का समय रहेगा... भारत उसके उद्योग एवं प्राकृतिक संसाधनों के वर्तमान कच्छप गति से चल रहे विकास और केवल कुछ अंग्रेज कंपनियों का लाभ पहुंचाने की नीति से कभी धनवान नहीं बन सकेगा। भारत के खुले और तीव्र विकास के लिए यहां की मानवशक्ति तथा प्राकृतिक संसाधनों पर भरोसा करना होगा। वह दिन जरूर आएगा, जब इंग्लैंड अपने पूर्व कृत्यों के लिए क्षमा मांगेगा और दो समान मजबूत देश की तरह साथ-साथ रहने की इच्छा व्यक्त करेगा, तब हम उसे इस तरह सहयोग के लिए अवश्य तैयार होंगे।”

मई, 1939 में जब यह पुस्तक आई थी, तब कांग्रेसी सरकारों का समय था और पुस्तक पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया, किंतु सन् 1941 ई. में यह पुस्तक एकाएक प्रसिद्धि पाने लगी। उसका कारण था कि, युद्ध की घटनाएं लगभग वैसी ही गति से चल रही थीं, जैसी कि पुस्तक में आशंका व्यक्त की गई थी। औपनिवेशिक प्रशासन की दृष्टि में यह पुस्तक और भी खतरनाक थी क्योंकि इसमें अंग्रेजों को भारत के शत्रु की तरह दिखाया गया था बल्कि जर्मनी, इटली एवं जापान जैसे ब्रिटेन-विरोधी देशों का पक्ष लेने के लिए लोगों को उकसाया गया था।

26 सितंबर, 1941 ई. को लखनऊ से सुपरिंटेंडेंट ऑफ पुलिस, सी. आई. डी. ने इस पुस्तक की एक प्रति जो किसी ‘सर्च’ के दौरान प्राप्त की थी, सूचना विभाग के सचिव को भेजा तथा पूछा कि, “क्या यह आपत्तिजनक प्रकाशन है तथा इस पर कार्यवाही की जानी चाहिए?” 11 अक्टूबर, 1941 ई. को इस पुस्तक की समीक्षा आ गई। संयुक्त प्रांत के सचिव ने इस पर टिप्पणी करते हुए कहा कि :

“लेखक एक जाना-पहचाना व्यक्ति है और मेरी जानकारी के अनुसार, राजनैतिक कारणों से जेल भी हो आया है तथा इसमें ब्रिटेन के दुश्मनों, जर्मनी, इटली एवं जापान की आशावादी ढंग से प्रशंसा की गई है। इस पुस्तक में जोरदार ढंग से भारतीयों को सलाह दी गई है, कि उन्हें ब्रिटेन के शत्रुओं की मदद की जाए। इसके बावजूद कि यह पुस्तक विश्वयुद्ध के पहले का प्रकाशन है, विश्वयुद्ध शुरू होने के पश्चात् जैसे-जैसे युद्ध भारत के नजदीक आता रहा है, वर्तमान परिप्रेक्ष्य में और खतरनाक साबित हो सकती है। यह पाए जाने वाले राजद्रोहात्मक लेखों में से सबसे खतरनाक और जहरीले प्रकाशनों में से एक है। यह तथ्य कि (क) लेखक एक प्रसिद्ध व्यक्ति है, (ख) पुस्तक बहुत अच्छी लिखी गई है, (ग) आसानी से प्राप्त हो सकती है, (घ) मूल्य बहुत तार्किक है, यह और भी खतरनाक हो सकती है। इसे निश्चित तौर पर प्रतिबंधित कर देना चाहिए।”

एक दिन बाद 15 अक्टूबर 1941 को मुख्य सचिव, संयुक्त प्रांत सरकार ने पुस्तक पर प्रतिबंध की संस्तुति कर दी। अंततः 18 अक्टूबर, 1941 को संयुक्त प्रांत के मुख्य सचिव आर. आफ. मूडी के आदेश पर डिफेंस इंडिया रूल्स के अनुच्छेद संख्या 40 के उप-अनुच्छेद (1) के नियम (ट) के अंतर्गत 9 अधिसूचना सं. 2686 IV-448-41 के द्वारा राहुल सांकृत्यायन की पुस्तक ‘क्या करें’ प्रतिबंधित कर दी गई। □

संपर्क : सीएम-309, अभिमन्यु अपार्टमेंट, वसुंधरा इंकलेव, दिल्ली-110096, मो. 9560737977

दिमागी गुलामी

राहुल सांकृत्यायन

प्रस्तुत लेख सन् 1931 में प्रकाशित राहुलजी की लघु पुस्तक 'दिमागी गुलामी' का अग्रलेख है। इस छोटे से निबंध के माध्यम से उन्होंने अतीतजीवी न होने और भारतीय समाज को प्रगति के लिए भविष्योन्मुखी दृष्टि अपनाने की सलाह दी है...



जिस जाति की सभ्यता जितनी पुरानी होती है, उसकी मानसिक दासता के बंधन भी उतने ही अधिक होते हैं। भारत की सभ्यता पुरानी है, इसमें तो शक ही नहीं और इसलिए इसके आगे बढ़ने के रास्ते में रुकावटें भी अधिक हैं। मानसिक दासता प्रगति में सबसे अधिक बाधक होती है। हमारे कष्ट, हमारी आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक समस्याएं इतनी अधिक और इतनी जटिल हैं कि हम तब तक उनका कोई हल सोच नहीं सकते जब तक कि हम साफ-साफ और स्वतंत्रतापूर्वक इन पर सोचने का प्रयत्न न करें। वर्तमान शताब्दी के आरंभ में भारत में राष्ट्रीयता की बाढ़-सी आ गई, कम से कम तरुण शिक्षितों में। यह राष्ट्रीयता बहुत अंशों में श्लाघ्य रहने पर भी कितने ही अंशों में अंधी राष्ट्रीयता थी। झूठ-सच जिस तरीके से भी हो अपने देश के इतिहास को सबसे अधिक निर्दोष और गौरवशाली सिद्ध करने अर्थात् अपने ऋषि-मुनियों, लेखकों और विचारकों, राजाओं और राज-संस्थाओं में बीसवीं शताब्दी की बड़ी से बड़ी राजनैतिक महत्व की चीजों को देखना हमारी इस राष्ट्रीयता का एक अंग था। अपने भारत को प्राचीन भारत और उसके निवासियों को हमेशा से दुनिया के सभी राष्ट्रों से ऊपर साबित करने की दुर्भावना से प्रेरित हो हम जो कुछ भी अनाप-शनाप ऐतिहासिक खोज के नाम पर लिखें, उसको यदि पाश्चात्य विद्वान न मानें तो झूट से फतवा पास कर देना कि सभी पश्चिमी ऐतिहासिक अंग्रेजी और फ्रांसीसी, जर्मन और इटालियन, अमरीकन और रूसी, डच और जेकोस्ताव सभी बेईमान हैं, सभी षड्यंत्र करके हमारे देश के इतिहास के बारे में झूठी-झूठी बातें लिखते हैं। वे हमारे पूजनीय वेद को साढ़े तीन और चार हजार वर्षों से अधिक पुराना नहीं होने देते (हालांकि वे ठीक एक अरब बानवे वर्ष पहले बने थे), इन भलेमानों के ख्याल में आता है कि अगर किसी तरह से हम अपनी सभ्यता, अपनी पुस्तकें और अपने ऋषि-मुनियों को दुनिया में सबसे पुराना साबित कर दें, तो हमारा काम बन गया। शायद दुनिया हमारे अधिकारों की प्राचीनता को देखकर बिना झगड़ा-झंझट के ही हमें आज़ाद हो जाने दें, अन्यथा हमारे तरुण अपनी नसों में उस प्राचीन सभ्यता के निर्माताओं के रक्त होने के अभिमान में मतवाले हो जाएं और फिर अपने राष्ट्र की उन्नति के लिए बड़ी से बड़ी कुर्बानी भी उनके बाएं हाथ का खेल बन जाए, और तब हमारे देश को आज़ाद हो जाने में कितने दिन लगेंगे? आज हमारे हाथ में चाहे आग्नेय अस्त्र न हों, नई-नई तोपें और मशीन-गन न हों, समुंदर के नीचे और हवा के ऊपर से प्रलय का तूफान मचाने वाले पनडुब्बियां और जहाज़ न हों, लेकिन यदि हम राजा भोज के काठ के उड़ने वाले घोड़े और शूकनीति में बारूद साबित कर दें तो हमारी पांचों अंगुलियां घी में। इस बेवकूफी का भी कहीं ठिकाना है कि बाप-दादों के झूठ-मूठ के ऐश्वर्य से हम फूले न समाएं और हमारा आधा जोश उसी की प्रशंसा में खर्च हो जाए।

अपने प्राचीन काल के गर्व के कारण हम अपने भूत के स्नेह में कड़ाई के साथ बंध जाते हैं और इससे हमें उत्तेजना मिलती है कि अपने पूर्वजों की धार्मिक बातों को आंख मूंद कर मानने के लिए तैयार हो जाएं। बारूद और उड़नखटोला में तो झूठ-सांच पकड़ने की गुंजाइश है, लेकिन धार्मिक क्षेत्र में तो अंधेरे में काली बिल्ली देखने के लिए हरेक आदमी स्वतंत्र है। न यहां सोलहों आना बत्तीसों रत्ती ठीक-ठीक तौलने के लिए कोई तुला है और न झूठ-सांच की कोई पक्की कसौटी। एक चलता-पुर्जा बदमाश है। उसने अपने कौशल, रुपय-पैसे और धोखे-धड़ी तथा और तरह-तरह के प्रलोभन से कुछ स्वार्थियों या आंख के अंधे गांठ के पुरों को मिलाकर एक नकटा पंथ कायम कर दिया और फिर लगाने लगे छोटी-मोटी, शिक्षित और मूर्ख, काली और सफेद भेड़ें हा-हा कर नाक कटाने। जिंदगीभर वह बदमाश मौज करता रहा। मरने के बाद उसके अनुयायियों ने उसे और ऊंचा बढ़ाना शुरू किया। अगर उस जमात को कुछ शताब्दियों तक अपने इस प्रचार में कामयाबी मिली तो फिर वह धूर्त दुनिया का महान् पुरुष और पवित्र आत्मा प्रसिद्ध हो गया।

पुराने वक्त की बातों को छोड़ दीजिए। मैंने अपनी आंखों से ऐसे कुछ आदमियों को देखा है जिनमें कुछ मर गए हैं और कुछ अभी तक जिंदा हैं। उनका भीतरी जीवन कितना घृणित, स्वार्थपूर्ण और असंयत था; लेकिन बाहर भक्त लोग उनके दर्शन, सुमधुर आलाप से अपने को अहोभाग्य समझने लगते थे। नजदीक से देखिए, ये धार्मिक महात्माओं के मठ और आश्रम ढोंग के प्रचार के लिए खुली पाठशालाएं हैं और धर्म-प्रचार क्या, पूरे सौ सैकड़ें नफे का रोजगार हैं। अधिकांश लोग इसमें अपने व्यवसाय के ख्याल से जुटे हुए हैं। अयोध्या में एक महात्मा थे। उनसे रामजी इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने स्वयं बैकुंठ में आकर उनका पाणिग्रहण किया। हां, पाणिग्रहण किया! पुरुष थे पहले, पीछे तो भगवान की कृपा से वह उनकी प्रियतमा के रूप में परिवर्तित कर दिए गए। रामजी के लिए क्या मुश्किल है। जब पत्थर मनुष्य के रूप में बदल सकता है तो पुरुष को स्त्री के रूप में बदल देना कौन-सी बड़ी बात? ऐसा-ऐसा परिवर्तन तो आजकल भी अनायास कितनी बार देखा गया है।

एक नया मत इधर 50-60 वर्ष से चला है। वह दुनियाभर की सारी बेवकूफियों, भूत-प्रेत, जादू-मंत्र सबको विज्ञान से सिद्ध करने के लिए तुला हुआ है। बेवकूफ हिंदुस्तानी समझते हैं कि ऑक्सफोर्ड और कैम्ब्रिज से गढ़े नहीं निकलते और सभी जैक और जान्सन साइंस छोड़कर दूसरी बात ही नहीं करते। इन अधिकचरे पंडितों ने अपने अधूरे ज्ञान के आधार पर भूत-प्रेत, देवी-देवता, साधु-पूजा सबको तीस बरस पहले निकले वैज्ञानिक 'सिद्धांतों' से सिद्ध करना शुरू किया। हालांकि उन सिद्धांतों में अब 75 फीसदी गलत साबित हो गए हैं, लेकिन अभी अंधे भक्तों के लिए उस पुराने विज्ञान के पुट से तैयार किए हुए ग्रंथ ब्रह्मवाक्य बन रहे हैं। हिंदुस्तान का इतिहास बहुत लंबा-चौड़ा है ही-काल और देश दोनों के ख्याल से। हमारी बेवकूफियों की लिस्ट भी

उसी तरह बहुत लंबी-चौड़ी है। अंधी राष्ट्रीयता और उसके पैगंबरों ने हममें अपने भूत के प्रति अत्यंत भक्ति पैदा कर दी है और फिर हमारी उन सभी मूर्खताओं के पोषण के लिए सड़ी-गली विज्ञान की ध्योरियां और दिवालिया स्वतंत्रता तैयार ही हैं। फिर क्यों न हम अपनी अक्ल बेच खाने के लिए तैयार हो जाएं? जिनके यहां वायुयान ही नहीं, काठ के घोड़े भी आकाश में उड़ते हैं, जिनके यहां बारूद और आग्नेयास्त्र ही नहीं, मुख से निकली हुई ज्वाला में करोड़ों शत्रु एक क्षण में जलकर राख हो जाते हैं, जिनकी सूक्ष्म दार्शनिक विवेचनाओं और आत्मवचनाओं को सुनकर आज भी दुनिया दंग हो जाए, वह भला किसी बात को झूठा लिख सकता है? तिपाई पर भूत बुलाना, मेस्मेरिज्म, हेप्नाटिज्म आदि के द्वारा पहले वैज्ञानिक ढंग से हमें अपनी विस्तृत होती जाती बेवकूफियों के पास ले जाया गया और अब तो विज्ञान पारितोषिक विजेता लोग सरे मैदान हरसूराम और हरिराम ब्रह्म की विभूति बांट रहे हैं। आखिर जब नोबल पुरस्कार विजेता आलिवर आज भूतों-प्रेतों पर पुस्तकें लिख रहा है और कसम खा-खा कर लोगों में उनका प्रचार कर रहा है तो हमारे इन स्वदेशी भाइयों का कसूर ही क्या?

अभी तक शिक्षित लोग फलित ज्योतिष को झूठ समझते थे, लेकिन अब उसके भी काफी अधिक हिमायती हो चले हैं। वह इसे पक्का विज्ञान मानते हैं। ज्योतिषियों की भविष्यवाणी को छापने के लिए हमारे अखबार एक-दूसरे से होड़ लगा रहे हैं। 27 अगस्त की 'सर्चलाइट' एक ज्योतिषी महाराज की मौसम संबंधी भविष्यवाणी को एक प्रधान पृष्ठ पर स्थान देती है। फिर पूना में लाखों रुपये खर्च करके इसके लिए यंत्र और विशेषज्ञ रखने की जरूरत है? स्वदेशी का जमाना है, कांग्रेस का मंत्रिमंडल भी हो गया है। ज्योतिषियों को चाहिए कि एक बड़ा-सा डेपुटेशन लेकर प्रधान-मंत्रियों से मिलें। उनको विश्वास रखना चाहिए कि कांग्रेस के छह प्रांतों में ऐसे मंत्री बहुत कम ही होंगे जिनका ज्योतिष में विश्वास न होगा, ज्योतिषी लोग देश-सेवा के ख्याल से अपना वेतन कम करने को तैयार होंगे ही, फिर क्या जरूरत है कि स्वदेशी साधन के रहते ऋतु-भविष्य-कथन के यंत्र, भूकंप के सिस्मोग्राफ आदि का बखेड़ा और उस पर हज़ार-हज़ार, पंद्रह-पंद्रह सौ रुपए महीना लेने वाले विशेषज्ञों को रखा जाए? ज्योतिषी लोग अपने काम को बड़ी सफलता के साथ कर सकते हैं। उन्हें न यंत्रों की आवश्यकता है और न बाहर से सूचनाओं के मंगाने की। एक स्थान पर बैठे ही वह सभी बातें बतला दिया करेंगे! फिर तारीफ़ यह कि एक ही आदमी अतिवृष्टि और अनावृष्टि को भी बतला देगा और भूकंप को भी। स्वराज्य की किशत आने-जाने में अगर कुछ देर होगी तो उसे भी नेताओं की जन्म-पत्री देखकर बतला देगा। अभी इसी साल एक महाराज बादशाह की गद्दी देखने विलायत जाना चाहते थे। दुष्ट ग्रहों की उन्हें बड़ी फिक्र थी और उनसे भी अधिक फिक्र थी उनकी मां की। एक ज्योतिषीजी ने आकर मेघ-मिथुन गिनकर महाराज को भी संतुष्ट कर दिया कि कोई ग्रह खिलाफ नहीं है और मां को भी खम ठोककर कह दिया कि महाराज को कोई अनिष्ट नहीं है, मैं ज़िम्मेवारी लेता हूँ। सब लोग प्रसन्न हो गए। ज्योतिषीजी को 5,000 रुपये मिले। भला इतना सस्ता जिंदगी का बीमा कहीं हो सकता है? ऐसा होने पर एक और फायदा होगा। हरेक प्रांतीय सरकार में एक सरकारी ज्योतिषी और 10-5 सहायक ज्योतिषी होने पर मंत्रियों और पदाधिकारियों को भी ज्योतिषियों के पीछे गली-गली की खाक न छाननी पड़ेगी। अपनी बीबी और छोट-मोटे बबुआ-बबुनी सबका वर्ष-फल साल का साल पहुंचता रहेगा। स्वदेशी व्यवसाय को जरूर आपको प्रोत्साहन देना चाहिए और इससे बढ़कर शुद्ध स्वदेशी व्यवसाय और क्या हो सकता है जिसके दिल, दिमाग़, शरीर और परिश्रम सभी चीजें सोलहों आने स्वदेशी हैं।

हम लोगों के मिथ्या विश्वास क्या एक-दो हैं कि जिन्हें एक छोटे से लेख में लिखा जा सके? हमारे यहां तो इसके मिसिल के मिसिल और फाइल की फाइल तैयार हैं। और तारीफ़ यह है कि इन बेवकूफियों

के भारी-भरकर बोझ को सिर पर लादे हुए हमारे नेता लोग समुंदर पार कर जाना चाहते हैं। उन्हें पूरा विश्वास है कि बैकुंठ के भगवान, आकाश के नवग्रह और पृथ्वी के ज्योतिषी और ओझा-सयाने उनकी यात्रा में जरूर कुछ हाथ बटाएंगे।

हमारी जाति-पाति की व्यवस्था को ही ले लीजिए। यह हमारे ऋषि-मुनियों के उन बड़े आविष्कारों में है जिन पर हमें बड़ा अभिमान है। राष्ट्रीय भावनाओं की जागृति के साथ-साथ यद्यपि कुछ इने-गिने नेता लोग जाति-पाति के खिलाफ़ बोलने लगे, लेकिन अब भी हमारे उच्चकोटि के नेताओं का अधिकांश भाग अपने ऋषियों की इस अद्भुत विशेषता की कद्र करने को तैयार है। नेताओं ने देख लिया कि यह जाति-पाति, आपस के फूट, भेद-भाव के बढ़ाने का एक सबसे बड़ा कारण बन रहा है। कुछ साल पहले तो भीतर-भीतर जातीय संगठन भी इन्होंने कर रखा था और अब भी बहुतों को उसे छोड़ने में मोह लगता है। मैं अन्य नेताओं की बात नहीं कहता। मैं खास कांग्रेस के नेताओं की बात कहता हूँ। उन बेचारों को इसी कोशिश में मरना पड़ रहा है कि कैसे राष्ट्रीयता और जाति-पाति दोनों साथ दाहिने-बाएं कंधे पर वहन किए जा सकते हैं। उनमें से कुछ ने तो जरूर समझ लिया होगा कि यह असंभव है। शुद्ध राष्ट्रीयता तब तक आ ही नहीं सकती जब तक आप जाति-पाति तोड़ने पर तैयार न हों। अगर आप जाति-पाति तोड़े हुए नहीं हैं, तो आपका वास्तविक संसार आपकी जाति के भीतर है। बाहर वालों के साथ तो सिर्फ़ कामचलाऊ समझौता है। जब आप किसी पद पर पहुंचेंगे तो ईमानदारी रहने पर आपकी राय को प्रभावित करने में सफलता सबसे अधिक आपके जाति-भाइयों की होगी। नौकरी-चाकरी दिलाने, कमेटी, सब-कमेटी में भेजने और सिफ़ारिश चिट्ठी लिखने में मजबूरन आपको अपनी जाति का ख्याल करना होगा। आदमी के दिल में हज़ारों कोठरियां जरूर हैं, लेकिन वहां ऐसी फ़र्क-फ़र्क कोठरियां नहीं हैं जिनमें एक में जाति-पाति का भाव पड़ा रहे और दूसरे में उससे अछूती राष्ट्रीयता बनी रहे। जैसे किसानों के आंदोलन में आने वाले समझदार आदमियों को पहले ही से तैयार होकर आना चाहिए कि उन्हें साम्यवाद में पैर रखना है, वैसे ही राष्ट्रीयता के पथ पर पैर रखने वालों को भी समझना चाहिए कि उन्हें जाति-पाति की दीवारों को तोड़ गिराना होगा। यदि कोई आदमी राष्ट्रीय नेता रहना चाहता है और साथ ही अपने जाति-भाइयों की घनिष्ठता को कायम रखना चाहता है तो या तो वह ईमानदार नहीं रहेगा या उसे असफल होकर रहना पड़ेगा। अपनी जाति के साथ घनिष्ठता रखकर कैसे दूसरी जाति का विश्वासपात्र कोई हो सकता है? मंत्रियों को तो खास तौर से सावधान रहना पड़ेगा क्योंकि जाति-भाइयों की घनिष्ठता उन्हें आसानी से बदनाम कर सकती है। मेरी समझ में प्रांत के लिए, राष्ट्र के लिए, कांग्रेस के लिए और व्यक्तिगत तौर से नेताओं के लिए अच्छा यही है कि हरेक प्रधान नेता तुरंत अपने लड़के-लड़कियों, भतीजे-भतीजियों अथवा भांजा-भांजियों या नाती-नतनियों में से कम-से-कम एक की शादी जाति-पाति तोड़कर दिखला दे, जैसा कि महात्मा गांधी तथा राजगोपालाचारी ने करके दिखाया।

आंख मूंदकर हमें समय की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए। हमें अपनी मानसिक दासता की बेड़ी की एक-एक कड़ी को बेदरदी के साथ तोड़कर फेंकने के लिए तैयार होना चाहिए। बाहरी क्रांति से कहीं ज्यादा जरूरत मानसिक क्रांति की है। हमें दाहिने-बाएं, आगे-पीछे दोनों हाथ नंगी तलवार नचाते हुए अपनी सभी रूढ़ियों को काटकर आगे बढ़ना चाहिए। क्रांति प्रचंड आग है, वह गांव के एक झोपड़े को जलाकर चली नहीं जाएगी। वह उसके कच्चे-पक्के सभी घरों को जलाकर खाक कर देगी और हमें नए सिर से नए महल बनाने के लिए नींव डालनी पड़ेगी।

राहुल सांकृत्यायन : संक्षिप्त जीवन-क्रम

- 1893- : 09 अप्रैल 1893 (वैशाख कृष्ण अष्टमी रविवार संवत् 1950 विक्रमी) को ननिहाल-ग्राम पन्दहा (ज़िला : आजमगढ़, उत्तर प्रदेश) में जन्म। बचपन का नाम : केदारनाथ। माता : कुलवन्ती देवी। पिता : कनैला (आजमगढ़) ग्रामवासी गोवर्धन पांडे। उनके चार पुत्रों और एक पुत्री में केदार सबसे बड़े।
- 1899-1905 : रानीकीसराय में प्रारंभिक पढ़ाई। ग्यारह साल की आयु में ब्याह (1904)।
- 1906-09 : निज़ामाबाद के मिडल स्कूल में। उसी दौरान कलकत्ता तक 'पहली उड़ान 1907 में और 'दूसरी उड़ान' 1909 में।
- 1910 : वैराग्य का भूत : अयोध्या, हरिद्वार, गंगोत्री-जमुनोत्री और केदारनाथ-बद्रीनाथ की यात्रा। काशी आकर पढ़ाई आरंभ। प्रयाग की यात्रा।
- 1911-12 : काशी में पढ़ाई।
- 1912-13 : परसा मठ (बिहार) में साधु और महंत के उत्तराधिकारी। नया नाम : रामउदारदास।
- 1913 : परसा से पलायन, दक्षिण भारत की ओर। तिरुमिशी का उत्तराधिकार। रामेश्वरम्, बेंगलूर, विजयनगर, पुणे-बंबई-नासिक, अहमदाबाद आदि की यात्रा।
- 1914 : परसा वापस। अयोध्या में तीन मास।
- 1915 : आर्य मुसाफिर विद्यालय, आगरा में। पहले लेख का प्रकाशन।
- 1916 : लाहौर में विद्याध्ययन और आर्यसमाज के प्रचारक। लखनऊ में। काशी में पिता के अंतिम दर्शन। प्रतिज्ञा : "पचास की उम्र पूरी होने तक आजमगढ़ जिले की सीमा में कदम नहीं रखूंगा।"
- 1917-20 : पंजाब से बंगाल तक घुमक्कड़ी। साथ ही लाहौर, चित्रकूट व काशी में अध्ययन। बौद्धधर्म की ओर झुकाव। लुंबिनी, बोधगया आदि की यात्रा।
- 1920-21 : दोबारा तिरुमिशी में। कुर्ग में चार मास।
- 1921 : असहयोग आंदोलन के दौरान राजनीति में प्रवेश। छपरा में सत्याग्रह का आयोजन। बाढ़-पीड़ितों की सेवा।
- 1922 : गिरफ्तार : बक्सर जेल में छह मास, 'बाईसवीं सदी' और 'कुरान-सार' का लेखन (संस्कृत में)। छूटने पर छपरा जिला-कांग्रेस के मंत्री। गया-कांग्रेस में सक्रिय योग।



- 1923-25 : नेपाल में डेढ़ मास। लौटने पर गिरफ्तार : हज़ारीबाग जेल में करीब दो साल खूब अध्ययन और लेखन किया। कानपुर-कांग्रेस के लिए प्रतिनिधि।
- 1926 : मेरठ में हरिनामदास (बाद के भदंत आनंद कौसल्यायन) से पहली बार भेंट। कश्मीर, लद्दाख, पश्चिमी तिब्बत और कनौर की यात्रा। छपरा में राजनैतिक कार्य। गोहाटी-कांग्रेस के लिए प्रतिनिधि।
- 1927-28 : श्रीलंका में उन्नीस मास अध्यापन-कार्य और बौद्ध साहित्य का गहन अध्ययन। आनंदजी भी श्रीलंका पहुंचे, बौद्धभिक्षु बने।
- 1929-30 : भारत वापस। नेपाल में अज्ञातवास। प्रथम तिब्बत-यात्रा। ल्हासा में नौ माह। श्रीलंका वापस पहुंचे। बौद्धभिक्षु बने। नया नाम : राहुल सांकृत्यायन। 'बुद्धचर्या' लिखी।
- 1930-31 : सत्याग्रह के लिए भारत में। कराची-कांग्रेस में भाग लेने के बाद देश-यात्रा। श्रीलंका वापस।
- 1932-33 : आनंदजी के साथ यूरोप-यात्रा। पहले श्रीलंका और फिर भारत वापस। दूसरी लद्दाख-यात्रा।
- 1934 : बिहार के भूकंप-क्षेत्र में सेवाकार्य। दूसरी तिब्बत-यात्रा।
- 1935 : जापान, कोरिया, मंचूरिया, सोवियत भूमि और ईरान की यात्रा। टाइफाइड से बाल-बाल जान बची।



- 1936 : नेपाल में। तीसरी तिब्बत-यात्रा। साक्या में महत्वपूर्ण तालपोधियों की खोज।
- 1937 : प्रयाग व पटना में। डॉ. जायसवाल का देहांत। ईरान और सोवियत भूमि में दूसरी बार। लोला से घनिष्ठता।
- 1938 : अफ़ग़ानिस्तान में। भारत में। चौथी तिब्बत-यात्रा।
- 1939 : किसानों-मजदूरों के लिए संघर्ष। अमवारी किसान सत्याग्रह, सिर पर लाठी लगी। छपरा और हज़ारीबाग जेलों में। लोला को पुत्र (ईगोर) होने की सूचना मिली। भिक्षु के वस्त्र त्यागे। जेल से छूटे। दूसरे महायुद्ध का आरंभ। बिहार की कम्युनिस्ट पार्टी के संस्थापक-सदस्य।
- 1940-42 : प्रांतीय किसान सम्मेलन (मोतीहारी) के सभापति। अखिल भारतीय किसान सम्मेलन और सभा (पलाशा) के सभापति चुने गए। गिरफ़्तार हुए। हज़ारीबाग जेल और देवली कैप में 29 मास। 'विश्व की रूपरेखा', 'मानव-समाज', 'दर्शन-दिग्दर्शन', 'वैज्ञानिक भौतिकवाद', 'बोल्गा से गंगा' आदि पुस्तकों का लेखन।
- 1943 : पचास की आयु पूरी होने पर 34 साल बाद अपने आजमगढ़ ज़िले की नागार्जुन के साथ यात्रा। उत्तराखंड की यात्रा। 'नए भारत के नए नेता' का लेखन।
- 1944 : सोवियत-यात्रा की तैयारी। आंध्र प्रदेश व केरल की यात्रा। 'हिंदी काव्यधारा', 'जय यौधेय' आदि ग्रंथों का लेखन। रूस के लिए प्रस्थान। ईरान में।
- 1945-47 : ईरान में। रूस में पच्चीस मास : लेनिनग्राद विश्वविद्यालय में प्राध्यापक, लोला व पुत्र ईगोर के साथ गृहस्थी। 'मध्य-एशिया के इतिहास' की

सामग्री जुटाई। इंग्लैंड के रास्ते 17 अगस्त, 1947 को स्वदेश लौटे। देश की यात्रा। बंबई हिंदी साहित्य सम्मेलन के सभापति।

- 1948 : साहित्य-यात्रा। सम्मेलन का कार्य। परिभाषा-निर्माण का कार्य। किन्नर देश की यात्रा।
- 1949 : 'बौद्ध संस्कृति' का लेखन। कालिंपोड में परिभाषा-कार्य। हैदराबाद सम्मेलन में।
- 1950 : नई गृहस्थी। नीड की खोज : पहले नैनीताल में, फिर मसूरी के अपने बंगले में स्थाई निवास। कमला से विवाह।
- 1951 : राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की साहित्य योजना का कार्य। गढ़वाल-यात्रा।
- 1952 : मसूरी मजदूर संघ के मंत्री। 'गढ़वाल', 'मध्य-एशिया का इतिहास' (दो खंड) आदि का लेखन।
- 1953 : नेपाल-यात्रा। 'नेपाल', 'स्तालिन', 'लेनिन', 'कार्ल मार्क्स', 'बहुरंगी मधुपुरी' आदि का लेखन। बेटी जया का जन्म।
- 1954 : हिमाचल प्रदेश की यात्रा। सरहपाद के 'दोहाकोश' का संपादन व छायानुवाद।
- 1955 : पुत्र जेता का जन्म। मसूरी से विरक्ति। प्रयाग व वर्धा की यात्रा। 'संस्कृत काव्यधारा', 'चंद्रसिंह गढ़वाली' आदि का लेखन।
- 1956 : प्रयाग, पटना, छपरा, कलकत्ता की यात्रा। तीस साल बाद परसा की यात्रा। 'मेरी जीवन-यात्रा' (4, 5), 'ऋग्वेदिक आर्य', 'अकबर', 'जिनका मैं कृतज्ञ' आदि का लेखन। साल के अंत में नेपाल-यात्रा। हिंदी विश्वकोश के संपादक पद की अनिर्णित स्थिति के कारण मानसिक क्लेश।
- 1957 : आजमगढ़-यात्रा।
- 1958 : मसूरी का अपना बंगला बेचकर वहीं पर किराए के मकान में। साहित्य अकादमी का पुरस्कार। पन्डहा-कनैला की यात्रा। कश्मीर-यात्रा, चीन यात्रा। वापस देहरादून में।
- 1959 : देहरादून में। 'चीन में क्या देखा' का लेखन। श्रीलंका के विद्यालंकार विश्वविद्यालय में दर्शन के महाचार्य। पत्नी और बच्चों का निवास दार्जिलिंग में।
- 1960 : श्रीलंका में अध्यापन-कार्य। 'तिब्बती-हिंदी कोश', 'पालि काव्यधारा' आदि का लेखन। व्याधिग्रस्त।
- 1961 : दार्जिलिंग यात्रा। फिर एक बार श्रीलंका में। अगस्त में पुनः दार्जिलिंग वापस। उपचार। कलकत्ता में दिसंबर में स्मृतिलोप।
- 1962 : कलकत्ता के अस्पताल में इलाज। मास्को में सात महीने इलाज।
- 1963 : 23 मार्च को दार्जिलिंग वापस लौटे। 14 अप्रैल को महाप्रयाण!

राहुल वाड्मय

लेखन-काल

उपन्यास, कहानी
मौलिक

1.	(1) बाइसवीं सदी	1923	33.	(3) मेरी जीवन-यात्रा, भाग-3	1951
2.	(2) जीने के लिए	1939		(रूस में पच्चीस मास)	
3.	(3) सिंह सेनापति	1942	34.	(4) मेरी जीवन-यात्रा, भाग-4	1956
4.	(4) जय यौधेय	1944	35.	(5) मेरी जीवन-यात्रा, भाग-5	1956
5.	(5) मधुर स्वप्न	1949-50	36.	(6) नए भारत के नए नेता	1942-43
6.	(6) राजस्थानी रनिवास	1952	37.	(7) बचपन की स्मृतियाँ	1953
7.	(7) विस्मृत यात्री	1953	38.	(8) अतीत से वर्तमान	1953
8.	(8) दिवोदास	1960	39.	(9) स्तालिन	1953
9.	(9) सतमी के बच्चे (कहानी)	1935	40.	(10) लेनिन	1953
10.	(10) वोल्गा से गंगा (कहानी)	1942	41.	(11) कार्ल मार्क्स	1953
11.	(11) कनैला की कथा (कहानी)	1955-56	42.	(12) माओ त्से तुंग	1953
12.	(12) बहरंगी मधुपरी (कहानी)	1953	43.	(13) सरदार पृथ्वीसिंह	1944

अनुवाद

13.	(1)	शैतान की आंख	1923	47.	(17)	चंद्रसिंह गढ़वाली	1955
14.	(2)	विस्मृति के गर्भ में	1923	48.	(18)	सिंहल घुमक्कड़ जयवर्धन	1960
15.	(3)	जादू का मुल्क	1923	49.	(19)	सिंहल के वीर पुरुष	1960
16.	(4)	सोने की ढाल	1923	50.	(20)	कप्तान लाल	1961
17.	(5)	दाखुंदा	1947				
18.	(6)	जो दास थे	1947			हिमालय-दर्शन, यात्रा-विवरण	
19.	(7)	अनाथ	1948				
20.	(8)	अदीना	1951	51.	(1)	दोर्जेलिंग-परिचय	1949-50
21.	(9)	सूदखोर की मौत	1951	52.	(2)	कुमाऊँ	1950
22.	(10)	शादी	1952	53.	(3)	किन्नर देश में	1948
				54.	(4)	सगरमाथा	1950-51

हिमालय-दर्शन, यात्रा-विवरण

51.	(1)	दोजैलिंग-परिचय	1949-50
52.	(2)	कुमाऊं	1950
53.	(3)	किन्नर देश में	1948
54.	(4)	गढ़वाल	1950-52
55.	(5)	नेपाल (अप्रकाशित)	1952-53
56.	(6)	जौनसार-देहरादून	1953
57.	(7)	हिमाचल प्रदेश (अप्रकाशित)	1954
58.	(8)	मेरी लद्दाख-यात्रा	1926
59.	(9)	लंका	1927-28
60.	(10)	तिब्बत में सवा वर्ष (प्रथम यात्रा)	1931
61.	(11)	मेरी युरोप-यात्रा	1932
62.	(12)	मेरी तिब्बत-यात्रा (तीसरी यात्रा)	1934
63.	(13)	जापान	1935
64.	(14)	ईरान	1935-36
65.	(15)	रूस में पच्चीस मास (मेरी जीवन-यात्रा : 3)	1951
66.	(16)	यात्रा के पन्ने	1951
67.	(17)	एशिया के दुर्गम भूखंडों में	1956

नाटक (भोजपुरी) : दो जिल्दों में

23.	(1)	जपनिया राछछ	1942
24.	(2)	देश-रच्छक	1942
25.	(3)	जरमनवां के हार निहिचय	1942
26.	(4)	ई हमार लड़ाई	1942
27.	(5)	दुनमुन नेता	1942
28.	(6)	नइकी दुनिया	1942
29.	(7)	जॉक	1942
30.	(8)	मेहरारुन की दरदसा	1942

आत्मकथा, जीवनियां

31.	(1)	मेरी जीवन-यात्रा, भाग-1	1940
32.	(2)	मेरी जीवन-यात्रा, भाग-2	1944

68.	(18) चीन में कम्यून	1959
69.	(19) चीन में क्या देखा?	1959
70.	(20) सोवियत भूमि	1938
71.	(21) सोवियत मध्य-एशिया	1947
72.	(22) घुमकड़-शास्त्र	1949

राजनीति, साम्यवाद

73.	(1) साम्यवाद ही क्यों?	1934
74.	(2) दिमागी गुलामी	1937
75.	(3) क्या करें?	1937
76.	(4) तुम्हारी क्षय	1939
77.	(5) आज की समस्याएं	1944
78.	(6) आज की राजनीति	1949
79.	(7) भागो नहीं दुनिया को बदलो	1944
80.	(8) कम्युनिस्ट क्या चाहते हैं? (पंफ्लेट)	1954
81.	(9) रामराज्य और मार्क्सवाद	1957

विज्ञान, दर्शन

82.	(1) विश्व की रूपरेखा	1941
83.	(2) मानव-समाज	1941
84.	(3) मानव की कहानी (जया-जेता को पत्र)	1959-61
85.	(4) दर्शन-दिग्दर्शन	1941-42
86.	(5) वैज्ञानिक भौतिकवाद	1942

पुरातत्व

87.	(1) पुरातत्व निबंधावली	1936
88.	(2) आजमगढ़ की पुराकथा (अप्रकाशित)	1957

बौद्ध धर्म व संस्कृति तथा इस्लाम धर्म

89.	(1) बुद्धचर्या	1930
90.	(2) धम्मपद (पालि-संस्कृत-हिंदी)	1933
91.	(3) मज्झिम निकाय (अनुवाद)	1933
92.	(4) विनय पिटक (अनुवाद)	1934
93.	(5) दीर्घ निकाय (अनुवाद)	1935
94.	(6) बौद्ध संस्कृति	1949
95.	(7) बौद्ध दर्शन	1942
96.	(8) महामानव बुद्ध	1956
97.	(9) तिब्बत में बौद्ध धर्म	1933
98.	(10) इस्लाम धर्म की रूपरेखा	1923

इतिहास

99.	(1) मध्य-एशिया का इतिहास, भाग-1	1951-52
100.	(2) मध्य-एशिया का इतिहास, भाग-2	1951-52
101.	(3) भारत में अंग्रेजी राज के संस्थापक (अनुवाद)	1955

102.	(4) ऋग्वेदिक आर्य	1956
103.	(5) अकबर	1956

साहित्य

104.	(1) साहित्य निबंधावली	1949
105.	(2) राहुल निबंधावली (साहित्य)	1970
106.	(3) हिंदी काव्य-धारा (अपभ्रंश काव्यधारा)	1944
107.	(4) आदि-हिंदी की कहानियां और गीतें	1950
108.	(5) दक्खिनी हिंदी काव्यधारा	1951
109.	(6) सरहपाद : दोहा-कोश (हिंदी छायानुवाद सहित)	1954
110.	(7) हिंदी साहित्य का बृहद इतिहास, भाग-16 (संपादन)	1957
111.	(8) पालि साहित्य का इतिहास	1961
112.	(9) तुलसी रामायण (संक्षेप)	1957

कोश

113.	(1) शासन शब्दकोश	1948
114.	(2) राष्ट्रभाषा कोश	1951
115.	(3) तिब्बती-हिंदी कोश भाग-1 (प्रकाशित) भाग-2 (अप्रकाशित)	1960 1972

तिब्बती शिक्षा

116.	(1) तिब्बती बालशिक्षा	1933
117.	(2) पाठावली, भाग-1, 2, 3	1933
118.	(3) तिब्बती व्याकरण	1933

संस्कृत, पालि, प्राकृत

(संकलन, अनुवाद, संपादन)

119.	(1) संस्कृत पाठशाला (पांच भाग)	1928-55
120.	(2) संस्कृत काव्यधारा	1955-56
121.	(3) पालि काव्यधारा (अप्रकाशित)	1960
122.	(4) अभिधर्मकोश (वसुबंधु) टीका (शांतिरक्षित)	1928
123.	(5) वादन्याय (धर्मकीर्ति)	1936
124.	(6) प्रमाणवार्तिकम् (धर्मकीर्ति)	1938
125.	(7) अध्यर्धशतक (मातृचेष्ट)	1937
126.	(8) विग्रहव्यावर्त्तनी (नागार्जुन)	
127.	(9) वार्तिकालंकार : (प्रज्ञाकरगुप्त)	1953
128.	(10) प्रमाणवार्तिक भाष्य	
129.	(11) प्रमाणवार्तिक वृत्ति:	
130.	(12) प्रमाणवार्तिक स्ववृत्ति टीका	
131.	(13) हेतुबिंदु (धर्मकीर्ति)	1949
132.	(14) विज्ञप्तिमातृता सिद्धि:	1934
133.	(15) विनयसूत्र (गुणप्रभ)	
134.	(16) संबंध-परीक्षा (धर्मकीर्ति)	
135.	(17) निदान-परीक्षा	
136.	(18) सूत्र-कृतांग	
137.	(19) महापरिनिर्वाण सूत्र	

अंग्रेजी

138.	Selected Essays of Rahul Sankrityayan (प्रकाशन : 1984)
------	---

बारिश में

शर्मिला जालान

शाम के सात बज रहे होंगे। मैं मोतीलाल नेहरू रोड के अपने दूसरी मंजिल के कमरे में बैठी खिड़की से बाहर होती मूसलाधार बारिश को देख रही हूँ। महसूस कर रही हूँ बारिश के साथ चलने वाली तेज़ हवा को। हवा अपने आवेग में है। डैने फैलाए खिलाए हुए धरती और आकाश को। इस हवा के कारण पानी की बौछारें खिड़की से कमरे में आ रही हैं। बाहर सड़क पर गुलमोहर का पेड़ है। उससे सटकर जो स्ट्रीट लाइट लगी है उस पर तेज़ बारिश के छोट्टे पड़ रहे हैं और सड़क की गरमी को कम कर रहे हैं। बिजली चमक रही है और रह-रह कर बादल गरज रहे हैं। लैंप पोस्ट पर गुलमोहर की डालियां झुकी हुई हैं। घनी-घनी पत्तियां गहरे हरे रंग की नज़र आ रही हैं। सूखने-झरने के बाद पेड़ों को बारिश से नया जीवन मिल रहा है।



गाड़ियां रुकी हुई हैं। ट्रैफिक जाम के कारण खड़ी गाड़ियों के हार्न से और पड़ोस में हुई मौत से मन व्याकुल हो रहा है।

कुछ देर पहले माधवी के साथ बैठी थी। माधवी ने रेड लाइट इलाके के बच्चों पर बहुत काम किया है। उन्होंने बाहर की कई बातें बताईं। इन बातों के बीच अंदर की कई बातें अनकही रह गईं। हो सकता है उनकी बातों का भी असर हो। हां, मन बार-बार उनकी तरफ ही जा रहा है।

कैसी मधुर आवाज़। किसी किशोरी का गला, कुंवारापन आवाज़ से गया नहीं है। पहली बार मैंने उन्हें पास से देखा तो पाया, उनके स्वर में जो ताज़गी थी वह चेहरे पर नहीं थी। चेहरे की लकीरों को देखकर कोई भी कह सकता है कि वह बूढ़ी हो रही हैं।

आवाज़ और लकीरों में कोई मेल नहीं है, ऐसा एक बार लगेगा। दूसरी बार ऐसा नहीं लगेगा। उनके शब्दों के चयन में, उनके बोलने की लय व उतार-चढ़ाव में कोई छुपा संताप और पीड़ा चमक ही जाती है। उम्र पचास की हो सकती है।

वह मेरे पास आई और हलके से उन्होंने मेरी हथेली दबा दी। उनके स्पर्श में कुछ था। पवित्र व कोमल। लगा चंपा-मोगरा की खुशबू

हाथ में आ गई है। हरा-भरा बाग हाथ पर उतर आया हो। उनके मन में एक खुला परिसर है जिसमें चंपा-चांदनी के फूल खिले हुए हैं। उन्हें देखकर लगा, उस क्षण वह अपनी कथा कहना चाहती थीं। वे बातें जो उन्हें न सोने देती न जगने। यह भी लगा कि वह उस क्षण कुछ नहीं कहना चाहती थीं। उनके पास उस कहानी को छोड़ कर कुछ भी नहीं बचा। यह कथा वह कह देगी तो अनाथ हो जाएगी। उसी तरह जिस तरह वह बार-बार होती रही है। इसी पसोपेश में माधवी ने धीरे-धीरे बोलना शुरू किया—

क्या अट्ठाइस साल से ज्यादा हो गए?

उस दिन मेंह बरस रहे थे। सावन और आषाढ़ के महीनों में कहर टूटता है। चादर तन जाती है ज़मीं से आसमां तक।

एक लय।

संगीत।

पानी का धरती पर गिरने का संगीत।

गिर कर बिछलने का गीत।

माधवी ने मुंह उठाकर ऊपर देखा। इतना पानी कहां से आ रहा था।

साफ़ आसमान। बादल के कोई निशान ही नहीं और अनवरत लड़ी पर रही है। वह मूसलाधार बारिश को देख रही थीं और अंदर से

एक तरफ़ काले बादल से फैला अंधेरा व धुंध है, तो दूसरी तरफ़ स्ट्रीट लाइट का उजाला। स्ट्रीट लाइट की रोशनी मोती लाल रोड की सड़क को कुछ दूर तक रोशन कर रही है। इस तरह अंधेरे व उजाले का खेल चल रहा है। हवा में ठंडक है। इस हवा के स्पर्श से, मन भटक रहा है। कई छायी मन में बन रही है। आसपास किसी के होने, न होने का, बसने और उजड़ने का राग बज रहा है।

मोतीलाल रोड के इलाके में कई वकील बाबू रहते हैं। कल सुना कि पड़ोस में रहने वाले वकील बाबू की पत्नी नहीं रहीं। हम सभी इस बात से हैरान हैं कि उनकी मां जिनको देख कर हमें लगता था कि किसी भी दिन कुछ हो सकता है, वे तो ठीक हैं और पत्नी की मृत्यु हो गई! उनको क्या हुआ होगा!

कोई ठीक से कुछ बता नहीं पा रहा था। वकील बाबू व उनके परिवार का पड़ोस में होना सिर्फ़ देख कर एक-दूसरे के संसार को जानना है, उनसे हमारा कोई संवाद नहीं।

मैं वकील बाबू की पत्नी को काम करने वाली नौकरानियों से बात करते हुए तब देखा करती थी जब वे अपने कमरे से निकल बरामदे में आती थीं और मैं अपने चौके में किसी काम से जाती।

वकील बाबू के विशाल मकान के अहाते में लगे कनेर के पेड़ की डालियां मेरे मकान की गली में झुकी रहती हैं। मेरे कमरे से वहां लगे केले और पपीते के पेड़ दिखाई देते हैं और छुटपन के बगीचे की याद दिलाते हुए मेरे मन के एक कोने को हरा-भरा व नम बनाए रखते हैं।

अगस्त का दूसरा सप्ताह है। दोपहर में उमस थी और यह लग रहा था कि बारिश होगी। हुई भी। अचानक पानी पड़ने लगा। इतना पानी जमा होने लगा कि सड़क पर दौड़ती गाड़ियां रुकने लगीं। खिड़की से देखा कि मोतीलाल रोड पर बालीगंज सर्कुलर रोड से आने वाली



उनकी मां लगातार उन्हें पुकार रही थीं पर उन्हें बारिश की आवाज़ के अलावा कुछ नहीं सुन रहा था।

उनके हाथ में एक पत्र था और उसे पढ़ने के बाद उनकी आंखों से आंसू बहते जा रहे थे। दो आंखें मानो दो समुद्र। उन्होंने देखा पत्र गीला हो गया है। उन्होंने पत्र को भीगने दिया। पत्र ज़मीन पर गिर गया। वह अनमनी-सी खड़ी हुई थीं। व्याकुलता में पत्र पैरों के नीचे आ गया। वह उस पत्र पर पांव रख आगे बढ़ गईं। वह रोना नहीं चाहती थीं। कितना रोएं! आंसू थे कि ठहर ही नहीं रहे थे। उन्होंने अपनी आंखों पर खूब पानी मारा। मुंह धोया ताकि मां को यह न लगे कि वह रो रही हैं। पर यह झूठ है कि वह रोना नहीं चाह रही थीं। उस घड़ी वह रोना चाह रही थीं। वही तो था उनके वश में जो वह कर सकती थीं। वह अपने साथ उस पल अकेली थीं। वह और उनके आंसू।

वह आज वर्षों बाद मेरे सामने फिर रो रही थीं। इस बीच कई सावन आ कर चले गए। इस बार न जाने क्या हुआ कि उनके मन ने फिर से उमड़ना-बरसना शुरू कर दिया। बीच के इतने साल वह रोई ही नहीं। आज पचास साल की उम्र में उन्हें रुलाई क्यों आ रही है!

उन्हें खुद पर लाड़ आ रहा कि वह रो रही हैं। वह खुद को समझा रही हैं कि उन्हें अब और नहीं रोना चाहिए। मत रोओ। अब चुप हो जाओ। रोना बंद करो पर वह खुद को रोने से क्यों रोक रही हैं? रो लें जीभर कर। वह उन आंसू का रहस्य जानने आई थीं कि उनका मन उन उमड़ते बादलों के साथ क्यों उमड़ रहा था।

वह सो नहीं पा रही है। वह वर्षों से सोई नहीं है। युवा उम्र की अपनी रची हुई कोई अनकही थकान शरीर पर मन पर वर्षों से चढ़ी हुई है। इस थकान की चादर को कोई नहीं देख सकता।

वह जब अपने बारे में सोचती है तो अपने बारे में सोच नहीं पाती। वह यह जानती है कि उनकी कहानी उस सूने आकाश की कहानी है जिसे कोई परिंदा चीरता हुआ निकल जाता है और कोई चिन्ह नहीं बचता।

वह संशय में है कि कहीं अपने मन के अवचेतन के गलियारों को खंगाल कर, उन जगहों पर जहां वह पहले कभी नहीं गईं जाकर फिर से और अकेली और खाली तो नहीं हो जाएगी।

वह मुझे अपने बीस वर्षों के काम के बारे में बताने लगती हैं कि उन्होंने कैसे वेश्याओं के बच्चों को पढ़ाया। वह यह बताने लगती हैं कि उन्होंने इन वर्षों में यह माना है कि जब तक हम इन वेश्याओं के बच्चों को आध्यात्मिक परिवेश व माहौल नहीं देंगे उनके जीवन से काले बदल नहीं छटेंगे।

वह वहां के जीवन के बारे में बताते हुए यह भी बताती हैं कि इन वेश्याओं ने समाज का कितना बोझ अपने ऊपर लिया है और समाज को बचाया है।

वह वेश्याओं के साथ के अपने अनुभवों को बताती हैं। वह उस वेश्या के बच्चे की बात बताती हैं जो लेखक हो गया है और जिसकी दो किताबें आ गई हैं।

पर उनका मन भटक रहा है। वह बार-बार दो दशक पहले के जीवन की पगडंडी पर उतर जाती हैं। कुछ जो झुलस गया है वह हरा होने लगता है। आखिर इन बरसते मेंह के साथ उनके अंदर कुछ क्यों उगने लगता है। कुछ क्यों मरने लगता है। उनका मन निर्वसन हो जाता है।

मन अपने से ही सवाल करने लगता है और मन को उत्तर नहीं मिलता है।

मैं उनकी बातों को सुन कर कागज़ भरने लगी हूँ। वे बातें उतनी मामूली नहीं हैं जितनी दिखाई पड़ती हैं। इन घटनाओं में से कुछ

निकलने वाला है। उनके कहे शब्द अपना रूप बदलने वाले हैं। वह किसी पत्र की बात कर रही हैं।

वह पत्र! क्या था उसमें? किसका था वह पत्र?

माधवी कहने लगीं, “वह उस पत्र को पढ़ने के बाद नीमतल्ला घाट के भूतनाथ मंदिर चली गईं। उन दिनों वह कितनी युवा थीं। बाइस साल की। क्यों जा रही थीं वह शमशान घाट? एक तो शमशान घाट के इलाके को देखने के लिए दूसरा शिवालय की भीड़ में खुद को खोने के लिए..।

शिव मंदिर में सावन के महीने में इतनी भीड़ होती कि उनका जी घबराने लगता पर घर पर अकले उस खूत के साथ रहना और कठिन था। उनका मन व्याकुल होने लगा था सो वह मंदिर चली गईं थीं। वह मंदिर की एक पंक्ति में खड़ी हो गईं। वहां एक तरफ कुछ लोग भजन भज रहे थे तो दूसरी तरफ कुछ लोग ‘बोल बम’ के नारे लगा रहे थे। वह शिवलिंग तक जाने वाली कृतार में खड़ी हो गईं। वह वहां कानफोड़ आरती, कीर्तन, घी, तेल की चीकट गंध में खुद को भुला देने गईं थीं। उन्हें लग रहा था कि वह एक अनजली अस्थि हैं। मंदिर के परिसर में बहुत देर रहने के बाद भीड़-भाड़ वाली नीमतल्ला घाट की, पानी से भीगी गली में घंटों गुज़रने के बाद थक-हार कर बारिश बंद होने पर घर लौटी।

घर आने के बाद फिर पत्र की याद आ गई, क्या था पत्र में!

वह अविचल बैठी रही। उस पल आकाश शांत व एकाकी था। कोई बादल का टुकड़ा वहां नहीं था। उचाट था मन। रेत उड़ रही थी। ऐसा बवंडर आया था जिसे कोई नहीं देख सकता था। बस राख गिर रही थी।

वह कुछ देर रुक कर कहीं दूर देखते हुए फिर कहने लगी मानो अपने से ही बात कर रही हो-

मेरे बाबा कमला प्रसाद लाइब्रेरी के लाइब्रेरियन थे और मां कॉलेज में लेक्चरर। बाबा को लाइब्रेरी के परिसर में ही क्वार्टर मिला हुआ था। हां, मैं अपने पिता को बाबा कह कर पुकारती। पड़ोस में रहने वाली चैताली दी अपने पिता को बाबा ही कहती सो मैं भी। माधवी गहरे डूबते हुए अपने से बात करते हुए बोलने लगी, “जानती हैं आप, मेरी सहेलियां मुझसे क्या कहती हैं? वे कहतीं, “तुम्हारे मां-बाबा दिनेश रॉय और मंजू गुप्ता का प्रेम-विवाह हुआ है न ऐसा कह वे निश्छल भाव से हंसती पर मेरी आंखें डबडबा जातीं। लगता मन में बालू की सूखी हुई पपड़ियां हैं जो हाथ लगे ही भुरभुरा जाती हैं। मेरी सहेलियां ऐसी बातें कह सोचतीं कि वे चुहल कर रही हैं पर मेरा मन कैसा-कैसा हो जाता।

प्रेम!

ओह! मैं इस शब्द के पीछे की मृगतृष्णा को देखती। कलह व आर्तनाद को सुनती। मैं प्रेम शब्द सुन सहम जाती। असहाय हो जाती।

मां की सहेलियां मां को जब तब बताती ही रहतीं कि उन्होंने मेरे बाबा को कभी विक्टोरिया तो कभी रवीन्द्र सरोवर व सफारी पार्क में उन युवतियों के साथ देखा है जिनकी मदद वे लाइब्रेरी में किया करते थे। मां मुझसे तीस साल बड़ी थीं। मैं बीस की और मां पचास की। पचास साल की उम्र में मां के चेहरे पर असमय बनी लकीरें उन्हें साठ व पैंसठ की बना देतीं। मां के चेहरे की लकीरों का मां के मन से कोई मेल नहीं था। मां कोमल व युवा थीं।

अपनी असमय आई बीमारी से लड़ती अकेली स्त्री।

बाबा के एक मित्र थे। जोगेन बाबू। पत्रकार थे। मैं उन्हें जोगेन चाचा कहती। वे दिल्ली में रहते थे हमारे घर कभी-कभी आते। वे मां से बाबा की बातें करते। कहते, “दिनेश को मैंने बहुत समझाया पर वह सुनता नहीं।” वे और मेरी व मां की चिंता करते थे। वे बाबा से कमरे

में अकेले जब बात करते दोनों में कुछ ऐसा तनाव हो जाता कि वे फिर बिना रुके वहां से चले जाते।

शरत उनका लड़का था। वह फ्रीलांसिंग करता था। एक बार जब वह शांतिनिकेतन जा रहा था। कलकत्ता आया।

पूरे दिन कलकत्ते में हमारे, क्वार्टर में रुका था। उस दिन जब मैं कॉलेज से घर आई तब मैंने उसे पहली बार नीले रंग के जींस पर केसरिया कुरता पहने हलकी दाढ़ी व चश्मे में देखा। उस दिन वह नाक पर आ गए अपने चश्मे को ठीक कर रहा था।

मेरे हाथों की अंगुलियों में पीले कनेर के फूल फंसे हुए थे। मैं जब भी घर आती लाइब्रेरी के परिसर के बड़े पेड़ों को छूती हुई, जामुन, चांदनी, दोलन चंपा के पेड़ों के पास से गुजरती हुई, कनेर के फूलों को अंगुलियों में पहनती, फूलों से सजी हुई लौटती। शरत ने उस दिन मुझे हलके नीले रंग की पुरानी पड़ चुकी कमीज़ व चूड़ीदार में फूलों के संग देखा।

उसके इस तरह देखने की लय को तोड़ते हुए मैंने उसे कनेर के फूलों के बारे में बताना शुरू कर दिया। अपनी झंप मिटाने के लिए मैंने कहा कनेर गंजपन को मिटाने के लिए औषधि के रूप में काम में लिया जाता है। शरत ने कहा, “क्या मैं इसको पीस कर लगाऊँ, पर मैं गंजा नहीं हुआ हूँ।” मैं खिलखिला कर हंस पड़ी। मेरी हंसी से लगा कनेर का पीला रंग फूट कर पूरे कमरे में रच-बस गया है। मैंने शरत को देखा। वह मुझे इस तरह नहीं देख रहा था जिस तरह एक युवक एक युवती को पहली बार देखता है। वह ऐसे देख रहा था जैसे मुझे जानता हो। उसने पहली नज़र जो मुझ पर डाली उससे मैं असहज नहीं हुई। मुझे उसकी आंखें अच्छी लगीं।

मैं उससे कुछ साल ही छोटी थी पर खूब उत्साह व कल्पना से भरी हुई। मेरे अंदर का बचपन मेरे युवा मन को पीछे छोड़ बाहर आ गया। मैं बहुत खुश थी। मेरा मन बहुत बातें करने को होने लगा। मैंने पूरे दिन उसे बहुत बातें बताईं। पड़ोस में रहने वाली कनक मासी और चैताली दी की बातें। चैताली दी बहुत अच्छा नाचती हैं, गज़लों पर भी नाच करती हैं। कई बार मैंने उनके साथ छोला, दाल और लूची खाई है। वह बेगुन भाजा बहुत अच्छा बनाती हैं। उनके साथ खाते हुए मुझे बहुत भूख लगती है। वह बहुत सुंदर भी हैं। वह शांतनु दा से शादी करने वाली हैं।

उस दिन शरत भी पूरे दिन मुझे अपने बारे में बताता रहा। उसने कहा, “कभी उसका मन होता है कि किसी गांव में जाकर पढ़ाना शुरू कर दे। कभी उसका मन होता है वह फिल्मकार बन जाए ‘सत्यजित रॉय’ की तरह। उसने मुझे ‘द बाइसाइकिल थीफ’ की कहानी सुनाई। उसने जब मुझे सत्यजित रॉय की फिल्मों के बारे में बताना शुरू किया तब मैंने उससे ‘चारुलता’ फिल्म पर बहुत देर तक बात की और वह बहुत चाव से सुनता रहा। मैंने बताया कि मां के साथ मैंने गुरुदत्त की ऐसी कौन-सी फिल्म है जो नहीं देखी। गुरुदत्त की फिल्मों के बारे में, नायक व नायिका के अकेलेपन व अवसाद के बारे में जब उससे बात शुरू की वह मुझे देखने लगा। मैं जिस भाव से कह रही थी उसे देख वह कुछ अनकहा पढ़ रहा था। उसने मुझे नंदन में होने वाले फिल्म फेस्टिवल को देखने की सलाह दी। वह फिल्मों के बारे में बहुत जानता था। उसने पूछा, “तुम्हारी चैताली दी किसकी गज़लों पर नाचती हैं?” मैंने कहा, “जगजीत सिंह।” वह बोला, “जगजीत सिंह को मैं नहीं सुन सकता। मैं बेगम अख्तर को सुनता हूँ।” कहता, “बेगम अख्तर गाती हैं तो लगता है, दिल से गा रही हैं।” वह बड़े गुलाम अली खान की दुमरी की भी बात करता था। हमारे बीच फिल्म व गज़लों को लेकर बातें हुईं।

वह फिल्म का कोर्स करने पूना जाने वाला था। कुछ महीनों बाद जब वह वहां चला गया तब उसने मुझे वहां से पत्र लिखना शुरू किया। वहां से जब पत्र लिखता वहां के आकाश के बारे में बताता। मैंने पूना

का आकाश उसके पत्रों से देखा। हां, हम एक-दूसरे को पत्र लिखने लगे थे। जुलाई महीने की उस मुलाकात में ऐसा भाव शरत की तरफ से नहीं था कि हम पत्र लिखने लग जाएं। पहल मैंने ही की और उसने सहयोग किया। उसका जवाब थोड़ी देर से आता पर आता ज़रूर था।

मैं शरत के पत्रों में कुछ पढ़ने की लालसा रखती थी। वह बात उन चिट्ठियों में कभी नहीं आई, वह दिल्ली की असंवेदनशील दुनिया में अपने लिए एक दुनिया तलाश रहा था। वहां की भागदौड़ व ईर्ष्या और क्षुद्रता वाले जीवन की बातें लिखता था। अपने बार-बार दिल्ली से होते उचाट मन की बातें बताता था। कहता, “दिल्ली में रहना नहीं चाहता। यहां कुछ नहीं है।” कहता, “तुम भोली हो। कलकत्ते के लोग दिल्ली में नहीं रह सकते।” कुछ दिन लगातार पत्र लिखने के बाद उसने पत्रों का जवाब देना बंद कर दिया। पूरे साल उसका पत्र नहीं आया। उसकी खबर जोगेन चाचा से मिलती रहती कि वह किसी नौकरी में तीन-चार महीने से ज्यादा नहीं टिकता। वे उसकी चिंता करते थे। वे उसकी शादी की भी चिंता करते थे।

इस बीच चैताली दी ने शादी कर ली और सालभर के अंदर ही न जाने क्या हुआ कि वे बार-बार कनक मासी के पास आ जातीं। जब वे बहुत उदास रहतीं, बाज़ार जातीं और अपने लिए नए कपड़े ले आतीं। कई लिपस्टिक भी। फिर कुछ दिन उन कपड़ों व लिपस्टिक के साथ वे खुश रहतीं पर न जाने क्या हो जाता फिर से उदास हो जातीं। शायद शांतनु दा के साथ नहीं रहना चाहती थीं। इस बीच शरत को क्या हुआ सोच ही रही थी एक दिन अचानक उसका पत्र आया।

शरत ने हर बार की तरह अंतर्देशी के तीनों भागों को भरते हुए ऊपर-नीचे लिखते हुए अपनी नई नौकरी की खबर दी। चैताली दी आजकल किस गज़ल पर नाच कर रही हैं? चुहल करते हुए पूछा कि कहीं मैं भी जगजीत सिंह की गज़लों पर नाचने तो नहीं लगी हूँ। फिर अंत में लिखा कि स्वाति से दिसंबर महीने में उनकी शादी तय हो गई है। स्वाति के बारे में विस्तार से लिखा था कि वह कॉलेज में पढ़ाती हैं। उनके माता-पिता, घर परिवार के बारे में लिखा था। हां, पत्र में यही तो लिखा था।

स्वाति! कौन? पहले तो नहीं बताया। जोगेन चाचा ने भी नहीं बताया।

ऐसा पहली बार हुआ कि मैंने शरत के पत्र को संभाल कर नहीं रखा। उसे नष्ट होने दिया।

मैंने उस पत्र को ज़मीन पर गिरते आंसुओं से भीगने दिया। मैं न जाने क्यों उसके वह पत्र भी निकाल लाई जो दो साल तक वह मुझे लिखता रहा। मैंने सभी पत्र बारिश के नीच रख दिए। पत्रों के आसपास अंधेरा छाया हुआ था। बारिश में सब कुछ ढह गया। प्रकाश झर रहा था। निस्तब्ध था पूरा वातावरण। दूर कहीं बत्ती टिमटिमा रही थी। अंधेरे व उजाले का खेल चल रहा था।

उस अंधेरे में मैं अपने उन छुटपन के पुराने दिनों को याद करने लगी थी जब मैं बच्ची भी नहीं थी और युवा भी नहीं हुई थी। मैं एक ही चूड़ीदार को हर दिन पहन लेती थी क्योंकि वह मुझ पर फबती था। मैं बालों को गूँथ कर चोटी बनाना नहीं चाहती थी। खुले बाल रखना अच्छा लगने लगा था।

उन दिनों की बात है, मैं जब घर लौटती अक्सर मां को अकेला व उदास पाती। मां के अंदर बीमारी ने प्रचंड रूप धारण कर लिया था। बाबा के नित नए किस्से सुन वह घर में बेघर-सी थी।

मैं मां के पास जाती कि वह मुझसे कोई बात करेगी पर वह एक युवा होती बेटी के मन में कितनी बातें हो सकती हैं, यह सब भूल अपने कॉलेज व कमरे में कैद हो गई थीं।

घर आते ही कमरे का सन्नाटा मुझे बीहड़ जंगल में ले जाता।

मुझे डर लगने लगता। मेरे अंदर की बच्ची बाहर निकल मां से कुछ ज़िद करना चाहती, कुछ मांगती। मां की चुप्पी को झेल मां के पास से हट कहीं बाहर पेड़ों के झुरमुट में तसल्ली पाने छुप जाती। युवा होती लड़की को मां से कभी सहारा नहीं मिला।

किशोर उम्र में जब मैं हर महीने पीरियड होने लगा था, कई तरह की दिक्कतें आने लगी थीं। मां के पास जाती पर मां ने कभी कुछ नहीं समझा, न संभाला। मैं और मां एक तरह के दुख को झेल रहे थे। मैं हर महीने होने वाले पीरियड की यातना से अकेली जूझ रही थी और मां मेनोपोज की परेशानियों से। बाबा जिन स्त्रियों के साथ घूम रहे थे वे किस तरह की यातना से गुजरती हैं, यह जंगली इच्छा मेरे मन में जागती। बाबा क्या उन समस्याओं को जानते हैं पर जब वे मां व मेरी तकलीफ को ही नहीं समझ व पूछ रहे थे तब वे अपनी प्रेमिकाओं की तकलीफ को क्या समझ रहे होंगे।

उन दिनों में मैं किसके पास जाती? किससे कुछ भी कहती?

शरत से उस दिन मिलने के बाद मैं शरत को पत्र लिखती जिससे घर की घनी उदासी कम लगे। मेरे मन के परिसर में खिले दोलन चंचा के फूल मुझा न जाएं, शरत को पत्र लिखना मेरे लिए अपने घर से निकल उस परिसर में जाना था जहां बड़े गुलाम साहब थे और बेगम अख्तर की गज़ल थी। जहां सत्यजित रॉय की फिल्में थीं। जहां पुणे का आकाश था।

अपने पीरियड के दिनों की यातना को जिसे बताना चाहती थी वह मां ही थी। मैं मां से ही यह कहना चाहती थी कि मुझे अकेले खाना पसंद नहीं, मैं रात अकेले ही खाना खाती। बाबा बाहर ही खा कर आते और मां न जाने क्यों कभी खाती, कभी नहीं। मैं अपने कमरे में रात का खाना लेकर बैठती, खाना शुरू करती ही थी कि कभी मां तो कभी बाबा आकर बत्ती बंद कर देते। मैं कहती खाना खा रही हूँ। बाबा बत्ती जलाकर अपने सोने के कमरे में यह कह कर चले जाते कि जल्दी करो। मेरा मन मर जाता। कोई भी मुझसे यह नहीं पूछता कि मैं कब खाती हूँ और खाती भी हूँ या नहीं। मैं खाना छोड़ बाहर हो रही मूसलाधार बारिश को देखने लगती।

मैं जब स्कूल में थी घर आते समय रोज़ कोई पीछा करता था। मैं क्या करूँ? किससे कहूँ? कहाँ जाऊँ? वह मेरी नौद में घुस गया था। मुझे डर लगता। मेरे पांव सिकुड़ जाते। हो सकता है मुझे उन दिनों हलके दौरे भी आए हों क्योंकि मैं पसीने-पसीने हो जाती थी। मैं सब कुछ भूल जाती। मुझे कुछ भी पढ़ा याद नहीं रहता। मैं नौद में चलने लगती। मां को इसलिए नहीं बताती कि बाबा ने घर में पैसे भी देने बंद कर दिए थे। मां कहती, “माधवी तुम बच्चों को पढ़ाना शुरू कर दो।” मुझे डर था कि मां को शायद कैंसर हो गया है। मेरा डर ठीक निकला। मां को कैंसर ही निकला, बीमारी व इलाज का अंतहीन सिलसिला चला जो मां की मृत्यु के बाद ही खत्म हुआ।

मां ने अंतिम सांसें कब ली, पता नहीं। रात में जब मैंने उन्हें न ही करवट बदलते न ही कोई आवाज़ करते पाया तब सुबह मैं उनके करीब गई और देखा वह रात जिस तरह तकिए के नीचे हाथ रख सोई थी उस समय भी उसी तरह थी। उनका चेहरा शांत था। मैं उन्हें जोर-जोर से हिलाने लगी, यह जानते हुए भी कि वह अब अपने-आप नहीं हिलेंगी।

मैं रोई नहीं। चैताली दी के घर जाकर कनक मासी को बुला लाई। पड़ोस में रहने वाली सुमित्रा ताई अपने घर से तुलसी का गमला लाकर मां के सिरहाने रख गई थीं और अगरबत्ती जला दिया था। न जाने बाबा को किसने खबर दे दी थी। वह आ गए थे। मैंने बाबा को देखा। एक बार बाबा ने मेरे साथ छुटपन में सांप-सीढ़ी खेला था। मुझे सांप ने काट लिया था और मैं रोती जा रही थी। बाबा मेरे सिर पर हाथ फेरे जा रहे थे। आज बाबा को देखा तो पाया कि वह वही हैं।

वे सीधे चौके में गए और कुछ खोजने लगे। मैंने कनक मासी और सुमित्रा ताई से छुपाकर उन्हें एक डिब्बा पकड़ा दिया। इधर मां की लाश पड़ी थी उधर मैं बाबा को छुपाकर बिस्कुट खिला रही थी। मुझे पता है बाबा को हाई शुगर हो गया है। वह पेट में इन्सुलिन का इंजेक्शन लेने लगे हैं। उन्होंने रात खाना नहीं खाया होगा। उन्हें चक्कर आ सकता है। अपनी जिस प्रेमिका के साथ वे दो साल से रह रहे थे उन्होंने उन्हें निकाल दिया है। बाबा बीमार लगे। लगा वह भी शायद जल्दी मर जाएंगे।

मां के किमोथेरेपी के दिन बहुत यातनामय रहे और मेरे भी कम नहीं। उन दिनों बाबा अपनी प्रेमिका के साथ थे। उन्होंने अपनी एक प्रेमिका से शादी कर ली थी। यह सब उन दिनों हो रहा था जब मैं शरत को पत्र लिख रही थी। शरत को पत्र लिखना, मां को खूब अच्छी तरह संभालना भी था। मैं मां की बीमारी में मां के साथ थी। मैं मन में शरत से पूरे दिन बात करती, “आज मां को कीमोथेरेपी हुई। आज मां कुछ खा नहीं पाई।” शरत मेरे साथ बना रहता। मां की बीमारी के वे कठोर दिन जब बाबा साथ नहीं थे, मैंने शरत के सहारे काटे जिसके बारे में वह कुछ नहीं जानता था। वह यह सोचता था कि मुझे भी उसकी तरह फिल्मा में रुचि है। वह नई किताबों की बात करता पर जब उस दिन शरत ने, वह पत्र लिखा जिसमें स्वाति की बात थी, मैंने न जाने क्यों मां का साथ छोड़ दिया। मैं बाहर से मां के साथ थी पर मेरे अंदर सब कुछ झर गया था। मां के चेहरे पर असमय आई लकीरों के साथ मां को जला दिया गया था और मैं रोई भी नहीं।

कुछ दिनों बाद मैं एक एनजीओ से जुड़ गई और उन वेश्याओं के बच्चों को पढ़ाने लगी जिन्हें मैं अलीपुर ब्रिज के नवग्रह मंदिर के पास खड़े हुए देखती थी। उनको पढ़ाना उनको समय देना, उनके आंसू पोछना मेरे उस डर से निकलना था जिसके कारण मैं रात में पसीने-पसीने हो जाती थी। धीरे-धीरे मेरा काम बढ़ने लगा और मेरी व्यस्तता भी।

एनजीओ के काम के सिलसिले में सालभर पहले शरत से मिलना हुआ। वह रेड लाइट एरिया की रिपोर्टिंग करने आया था। लगभग बीस पच्चीस साल बाद जब मैंने शरत को देखा उसके बाल कम हो गए थे और काफी सफ़ेद भी। दाढ़ी भी हलकी सफ़ेद थी। दाढ़ी से उसका चेहरा भरा हुआ लग रहा था। वह पहली नज़र में पहचान में नहीं आया पर पास आने पर जब उसने नाक पर आए अपने चश्मे को ऊपर किया तब मन हुआ उससे बात करूँ। उसकी आंखें मुझे अच्छी लगीं।

वह मुझसे पूरे दिन वहां के जीवन की बातें पूछता रहा। उसने पूछा कि मां तो कॉलेज में पढ़ाती थीं और मैंने भी कॉलेज की नौकरी ज्वाइन कर ली थी फिर इस क्षेत्र में कैसे आई? और बाबा?

मैंने कहना शुरू किया, “मां के कीमोथेरेपी के दिन बहुत कठिन थे। मैं अकेली थी एक दो पड़ोसियों के साथ। एक नौकरानी को रखना पड़ा। बुला नाम था। उस की उम्र कम ही थी। वह और मैं मां को संभालते पर बुला बार-बार अपने घर चली जाती थी। उसका घर अलीपुर ब्रिज के पीछे की बस्ती में था। जब तीन दिन वह नहीं आई तब मैं उसे बुलाने गई और मुझे यकीन नहीं हुआ कि वह बीच-बीच में जाकर धंधा करती थी.. इधर मां को लेकर मैं कभी घर, कभी अस्पताल जा रही थी तो कभी बुला को बुलाने रेड लाइट एरिया में उसके घर।

एक दिन बुला रात में खूब रो रही थी। मैंने बहुत पूछा कि बात क्या है। रोते-रोते उसने कहा वह मर जाएगी।

मैंने मन में सोचा कि इसे बचाना चाहिए। बुला के जीवन को जैसे-जैसे देखती गई धीरे-धीरे उससे जुड़ती गई। बुला को मैं बचा नहीं सकी। किसी व्यक्ति से उसका लगाव था। वह पढ़ने-लिखने भी लगी थी। पर वह यह कह कर उसे छोड़ कर चला गया कि मुझे भूल जाओ। और कभी भी मेरे बारे में किसी को कुछ मत बताना। बुला को

पृष्ठ 52 पर जारी

पंजाबी सूफी-कविता के सप्तऋषि

नरेश

पंजाब में पैदा हुए या आबाद हुए सूफी-संतों में कई ऐसे महात्मा भी गुजरे हैं, जिनके घरों या खानकाहों में तो फ़ारसी बोली जाती थी परंतु वे जन साधारण से स्थानीय बोली ही में बात किया करते थे। इन संतों को स्थानीय बोलियों पर ऐसा अधिकार प्राप्त था कि इन्होंने कविता के लिए भी फ़ारसी के स्थान पर स्थानीय बोलियों का ही चयन किया। इतना ही नहीं, इन्होंने प्रतीकों और बिंबों के लिए भी अरब या ईरान की ओर नहीं देखा अपितु ये मोती भी भारत-भूमि पर से ही चुने और एक ऐसी काव्य-माला तैयार की, जो आज तक विभिन्न आस्थाओं के व्यक्तियों को जोड़ने का काम कर रही है। मैंने पंजाबी भाषा के सात सूफी-कवियों को 'सप्तऋषि' कहा है। मेरी दृष्टि में ये सातों महात्मा संत भी थे और कवि भी। पंजाब को पंजाब कहा जाने से पहले 'सप्तसिंधु' कहा जाता था। इसी संदर्भ में मैंने इनको 'सप्तऋषि' कहा है। इस लेख में मेरा उद्देश्य इन सात कवियों के जीवन तथा उनकी कविता पर प्रकाश डालना है।



करूं, कौन-से वस्त्राभूषण पहनूं कि मेरा पति मेरे वश में हो जाए। दूसरी स्त्री उत्तर देती है कि विनम्रता की भाषा बोल, संतोष का गुण अपने अंदर पैदा कर, समर्पण के वस्त्राभूषण पहन, तेरा पति तेरे वश में हो जाएगा। यह समझना कठिन नहीं है कि यदि व्यक्ति उक्त गुणों को धारण कर ले तो उसके लिए परमात्मा को प्रसन्न कर लेना दुष्कर नहीं है। कवि फ़रीद इसी सरलता के साथ जीवन तथा जगत् के, जीव तथा ब्रह्म के, स्रष्टा तथा सृष्टि के पारस्परिक संबंध की व्याख्या करते हैं और व्यक्ति को सत्य-मार्ग की ओर आकृष्ट करते हैं।

सुल्तान बाहू

सुल्तान बाहू सन् 1630 ई. में अवान (तहसील शेरकोट, ज़िला झंग) नामक गांव में पैदा हुए थे। उनके पिता मुहम्मद बायज़ीद शेरकोट के जागीरदार थे। बचपन से ही आपकी रुचि अध्यात्म में थी और आप अपने इष्ट से मिलाप के लिए व्याकुल थे। आपकी यही जिज्ञासा आपको सैयद अब्दुर्रहमान के पास ले गई, जिन्होंने आपको शिष्यत्व में लेकर विधिवत् कादिरि सूफी बना दिया। 1691 ई. में आपका देहावसान हुआ और आपके पार्थिव शरीर को कहरजाना नामक गांव में दफनाया गया।



शेख़ फ़रीदुद्दीन गंजेशकर

शेख़ फ़रीद का जन्म सन् 1172 ई. में कहतवाल नामक गांव में हुआ था, जो अब पाकिस्तान में है। आपने प्रारंभिक शिक्षा अपनी माता से प्राप्त की और फिर काबुल और मुल्तान में रहकर धार्मिक शिक्षा प्राप्त की। मुल्तान-प्रवास के दौरान आपकी भेंट ख़्वाजा बख़्तियार काकी से हुई, जिनको गुरु धारण करके आप विधिवत् रूप से सूफियों के चिश्ती संप्रदाय में दीक्षित हो गए। ख़्वाजा काकी की देखरेख में साधना की अनेक मंज़िलें पार करने के बाद आप बारह वर्ष हांसी में रहे और अंततः अजोधन जा बसे, जिसको अब 'पाकपटन' कहा जाता है।



शेख़ फ़रीद की महान् रचनाधर्मिता का अनुमान इसी तथ्य से लगाया जा सकता है कि उनकी मृत्यु के तीन सौ वर्ष बाद गुरु नानक उनकी दरगाह के बारहवें खलीफ़ा इब्राहीम से उनकी 'वाणी' मांगकर लाए, जिसे तदनंतर सिखों के धर्मग्रंथ 'ग्रंथ साहिब' में सम्मिलित किया गया। कवि के रूप में शेख़ फ़रीद ने अपने पाठकों/श्रोताओं को जीवन तथा जगत् से संबंधित इस्लामी-दर्शन समझाने का प्रयास किया है। उनकी कविता मनुष्य को पाप कर्मों से बचने और शुभ कर्मों में प्रवृत्त होने का उपदेश देती है। फ़रीद की कविता तरीक़त की धरती पर निर्मित शरीअत का वह भवन है, जिसमें योग की शून्य समाधि और वेदांत के दीप भी जल रहे हैं। अध्यात्म के गूढ़ रहस्यों को समझाने का कवि फ़रीद का अंदाज़ भी बड़ा दिलचस्प है। एक उदाहरण प्रस्तुत है :

उनकी कविता में एक स्थान पर एक स्त्री दूसरी स्त्री से पूछती है कि मैं ऐसी कौन-सी भाषा बोलूं, कौन-सा गुण अपने अंदर पैदा

सुल्तान बाहू ने कविता के लिए सी-हफ़ी विद्या का चयन किया। उनकी संपूर्ण कविता की विषयवस्तु केवल सूफी-दर्शन है। उनकी मान्यता है कि यदि ब्रह्म को खोजना है तो वही एक सत्य मार्ग अपनाना होगा, जिसे हज़रत मुहम्मद ने प्रशस्त किया था। वे अपने पाठकों को अहंकार से बचने का उपदेश देते हैं और उसको 'ज़िक्र' (नाम-जाप) के माध्यम से उस अवस्था को प्राप्त करने की प्रेरणा देते हैं, जहां पहुंचकर 'मैं' 'तू' में परिवर्तित हो जाता है। कवि बाहू ने सूफी-साधना के विभिन्न आयाम तो स्पष्ट नहीं किए हैं लेकिन उनकी कविता यह सत्यापन अवश्य करती है कि कवि ने जो कुछ कहा है, वह स्वानुभूत है। अपने गुरु के प्रति उन्हें ऐसी अगाध श्रद्धा है कि वे गुरु के दर्शन को लाखों-करोड़ों हज़ों के समान समझते हैं।

बुल्ले शाह

बुल्ले शाह 1680 ई. में उत्त के उस प्रतिष्ठित सादात परिवार में पैदा हुए थे, जो कभी उच से आकर लाहौर के निकट पांडोके नामक गांव में बस गया था। आपके पिता का नाम सैयद दरवेश मुहम्मद था। युवावस्था में धार्मिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद आपने अरबी और फ़ारसी भाषाओं



का ज्ञान प्राप्त किया तथा तफ़्सीर (व्याख्या) एवं फ़िकः (धर्मशास्त्र) में निपुण हो गए। सदगुरु की खोज में स्थान-स्थान पर भटकने के बाद आप कसूर जाकर शाह इनायत की शरण में चले गए तथा उनको गुरु धारण करके कादिरी संप्रदाय में दीक्षित हो गए।

बुलहे शाह की कविता बेबाकी और सत्यवादिता की कविता है। उनकी कविता में धर्म को कर्मकांड के रूप में धारण करने वालों की भर्त्सना की गई है और उनसे आग्रह किया गया है कि वे दिखावे की नमाज़ अदा करने के स्थान पर 'नमाज़े-वहदत' (एकनिष्ठ वंदना) अदा करें। कवि बुलहे शाह सर्वसाधारण को प्रेम-मार्ग की ओर आमंत्रित करते हैं क्योंकि उनके निकट प्रभु तक पहुंचने के लिए पांच बार की नमाज़, रोज़ा, ज़कात और हज तब तक अर्थहीन हैं जब तक प्रार्थी के मन में प्रभु-प्रेम की हिल्लोर न उठ रही हो। वे शरीअत को 'दाई' और तरीकत को 'माई' घोषित करते हैं और पाठक को निजत्व से ऊपर उठकर चराचर से प्रेम करने का उपदेश देते हैं। वे अपने गुरु के प्रति भी संपूर्ण श्रद्धाभाव से समर्पित हैं। उनकी कविता में अरबी-फ़ारसी परंपराएं भारत की साहित्यिक परंपराओं से आलिंगनबद्ध होती हुई दिखाई देती हैं।

अली हैदर

अली हैदर 1690 ई. में मुल्तान ज़िले के 'काज़िया' नामक गांव में पैदा हुए थे। मुहम्मद अमीन आपके पिता थे। सूफ़ी-संत शेर अली आपके धर्मगुरु थे, जिनका शिष्यत्व प्राप्त करके आप कादिरी संप्रदाय में दीक्षित हुए थे। आप लगभग सारी उम्र अपने गांव में ही रहे। पंजाबी के अतिरिक्त आपको अरबी-फ़ारसी भाषाओं पर भी अधिकार प्राप्त था।



कवि के तौर पर अली हैदर ने सूफ़ीमत को इस्लाम के सर्वथा अनुकूल सिद्ध करने का प्रयास किया है। उनका कथन है कि दिल का घूँघट मुश्किल से खुलता है और बिना गुरु कृपा के इसका खुलना भी संभव नहीं है। स्पष्ट ही अन्य सूफ़ी कवियों की भांति उनकी दृष्टि में भी गुरु सर्वोच्च सम्मान का अधिकारी है तथा यह भाव बार-बार उनकी कविता में प्रकट हुआ है। उनकी मान्यता है कि यदि इश्क-इलाही (प्रभु-प्रेम) का मन में अतिरेक हो तो दीन के रास्ते से भी प्रभु तक पहुंचा जा सकता है और कुफ़्र के मार्ग से भी। यही कारण है कि उनकी कविता में उनका 'रांझण' (ब्रह्म) ही उनके लिए सिजदा और रकूअ बन जाता है, उसका मुखारविंद उनके लिए काबा बन जाता है और उसका दर्शन ही उनके लिए हजे-अकबर बन जाता है। उनके इश्क की हालत यह है कि उनका प्रिय :

तू ही नज़र निगाह तू सुर्मा चश्म सियाह मस्तान भी तू।

मैंडे (मेरे) दिलबर यार प्यारे दीन भी तू ईमान भी तू।

और विनम्रता और समर्पण भाव की हालत यह है कि वे स्वयं को प्रिय का कुत्ता तक कह देते हैं।

हाशिम शाह

हाशिम शाह का जन्म 1735 ई. में ज़िला अमृतसर की तहसील अजनाला के 'जगदेव कला' नामक गांव में हुआ था। आपके पिता हाजी मुहम्मद शरीफ़ इस गांव के एक बड़ई अल्ला मुहम्मद के दत्तक पुत्र अब्दुल्ला कुरैशी की संतान थे। आप व्यवसाय से वैद्य थे किंतु साथ ही गंडे-ताबीज़ बनाने



का काम भी करते थे, जिसके कारण आपको 'शाहजी' कहा जाता था। प्रसिद्ध है कि एक बार आपने महाराजा रणजीत सिंह की किसी बीमारी का इलाज किया था और उन्होंने प्रसन्न होकर आपको सियालकोट के निकट धरपाल नामक गांव पारितोषिक के रूप में दिया था। तब आपने जगदेव कला छोड़कर धरपाल में अपनी रिहायश कर ली थी। यहीं पर 1823 ई. में आपने इस नाशमान संसार से प्रस्थान किया था। आपने पंजाबी के अतिरिक्त फ़ारसी तथा हिंदी में भी काव्य-रचना की है।

हाशिम मूल रूप में आख्यान के कवि थे। आध्यात्मिक कविता के साथ-साथ उन्होंने सोहणी-महीवाल, हीर-रांझा, सस्सी-पुनूं तथा शीरी-फ़रहाद के आख्यानों की रचना भी की है। जहां तक सूफ़ी-दर्शन का संबंध है, उनकी कविता में इसका अभाव ही नहीं, उनका लौकिक प्रेम भी अलौकिक प्रेम में स्थानांतरित होने में असमर्थ प्रतीत होता है। तब भी उनकी कविता में 'जब्रिया' दर्शन की झलक देखी जा सकती है। उनका यह संदेश भी उनकी रचना में मुखरित हुआ है कि "जिसकी तुमको तलाश है, वह तुम्हारे भीतर मौजूद है बल्कि वह तुम स्वयं ही हो।"

गुलाम फ़रीद

गुलाम फ़रीद का जन्म 1821 ई. में बहावलपुर रियासत के चाचड़ा नामक गांव में हुआ था। आपके पिता का नाम मौला बख्श था। आपका पालन-पोषण आपके बड़े भाई ख़्वाजा फ़ख़ुद्दीन ने किया था क्योंकि आपकी आठ वर्ष की आयु में ही आपके पिता का देहांत हो गया था। युवावस्था में आपने कई इश्क किए, जिसके परिणामस्वरूप आपको एक से अधिक विवाह करने पड़े किंतु आपका कोई भी इश्क या शादी आपकी अध्यात्म-साधना में बाधक नहीं बने। आप पंजाबी के अतिरिक्त अरबी, फ़ारसी, सिंधी, हिंदी, मारवाड़ी भाषाओं के ज्ञाता थे और शरअ एवं फ़िकः की भरपूर जानकारी रखते थे। बड़े भाई स्वयं सूफ़ी-साधक थे। उन्होंने आपको चिश्ती संप्रदाय में दीक्षित किया था।



गुलाम फ़रीद ने कविता के माध्यम से सूफ़ीमत की व्याख्या की है। उनकी कविता अश्ग़ाल से लेकर फ़ना और बका तक उन सभी पड़ावों को चिन्हित करती है, जिनमें से गुज़रकर सूफ़ी साधक अपने लक्ष्य को प्राप्त करता है। उनकी कविता मानव-प्रातुभाव का संदेश भी देती है। उनका मानना है कि "ख़ुदा ही है, जो कहीं राम और कृष्ण बनकर प्रकट होता है तो कहीं अरूप होकर निराकार बन जाता है।" अल्लाह और मुहम्मद पर संपूर्ण निष्ठा के बावजूद वे सूफ़ीमत और वैष्णवों की रस-साधना में कोई अंतर नहीं देखते हैं और अपने पाठकों को समझाते हैं कि "मंदिर मस्जिद हिकड़ो (एक ही) नूर।"

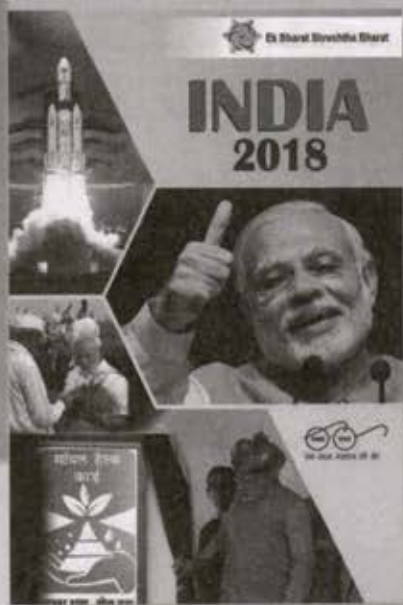
ये सातों कवि साधना में गुरु के महत्व एवं उसकी वरीयता को स्थापित करते हैं और इश्क को मार्ग-दर्शक बनाकर सत्यमार्ग पर चलने का उपदेश देते हैं। इन संत कवियों की कविता में अरबी-फ़ारसी परंपराएं भारतीय अध्यात्म-दर्शन से गले मिलती हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो इनकी कविता में आबे-कौसर एवं आबे-जमजम का गंगा तथा यमुना के साथ संगम होता है। निस्संदेह इन सूफ़ी-संतों की कविता पंजाबी साहित्य की श्रीवृद्धि ही नहीं करती हैं अपितु अध्यात्म-पिपासित आत्माओं को अमृतपान भी कराती है। □

संपर्क : 169, सेक्टर-17, पंचकुला-134109 (हरियाणा)

अब उपलब्ध



भारत 2018



भारत सरकार की नीतियों,
कार्यक्रमों और उपलब्धियों की
जानकारियों से परिपूर्ण पुस्तक



amazon.in और play.google.com पर
'ई बुक' के रूप में भी उपलब्ध



प्रकाशन विभाग

सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय,
भारत सरकार

सूचना भवन, सी जी ओ कॉम्पलेक्स, लोधी रोड, नई दिल्ली -110003

ऑनलाइन आर्डर के लिए
लॉग इन करें - www.bharatkosh.gov.in
या www.publicationsdivision.nic.in
अथवा संपर्क करें -
फोन - 011 24367453, 24367260, 24365609

प्रकाशन विभाग की अत्याधुनिक पुस्तक दीर्घा, सूचना भवन में पधारें



@DPD_India



www.facebook.com/publicationsdivision
www.facebook.com/yojanaJournal

तितली

विजयश्री तनवीर

वर्मा एक कमसिन लड़की ले आया।

ख़बर नहीं मानों खलबली थी। सो रातों-रात दावानल सी फैल गई।

बमर्शकल दो-ढाई हजार मकानों वाली इस मध्यवर्गीय कॉलोनी में तो रसोई में पकी भाजी-तरकारी भी गंध उड़ाकर अपने स्वाद का भेद खोल देती हैं.....ये तो एक जवान लड़की की गंध थी। सारा मोहल्ला गमक उठा। अम्मा सबेरे ही से अख़बार बनी ये खुफ़िया ख़बर लिए यहां वहां डोल रही थी।

“जो बामन होता तो ऐसी करनी से पहले सौ बार सोचता।”

कोई मौका हो अम्मा अपना ब्राह्मण पुराण बांचने से बाज़ नहीं आती। कर्म सिद्धांत के अम्मा के अपने ही जातिगत पैमाने थे।

“ऊंच जात ऐसे उत्पात नहीं करती।”

जो मुझे हंसने काबिल लगते थे और बहस का एक मुद्दा भी। हालाँकि अम्मा के साथ होने वाली बहस अमूमन च्यूडंगम की तरह कभी न ख़त्म होने जैसी हुआ करती थी जिसे बेस्वाद हो जाने पर सिर्फ़ थूककर ही पिंड छुड़ाया जा सकता है।

मुझे कलम चलाने का शौक था और लोगों को जांच-परखकर उनमें किरदार तलाशने का भी। मैं खुश थी कि चलो कुछ दिनों के लिए बेकार पड़ी मेरी कलम को एक रोज़गार मिल गया।

उन दिनों मैं एक छोटी चिड़िया-सी थी। जिसने अभी-अभी डैने फड़फड़ाना सीखा था और बिना अपनी औकात आंके ही आसमान के अनंत विस्तार को माप जाना चाहती थी। मेरा किताबी ज्ञान अच्छा था पर दुनियावी ज्ञान शून्य। ये अनुभव लड़कियों को विरासत में मां से मिला करते हैं और जब मां के अनुभवों से साझेदारी की उम्र हुई तो मां नहीं रही थी।

फिर भी मेरा सौभाग्य था कि मां नहीं थी तो अम्मा थी। भले ही उनकी दूर की नज़र कमज़ोर थी पर वो दूर तक देखती थी। ये अलग बात थी कि उनके तजुबे मुझे आउटडेटेड लगते थे। शायद इसलिए मैं और अम्मा कभी एकमत न हुए। हाँ, ईश्वर वर्मा इसका अपवाद था। वो ना कभी अम्मा को सुहाया न मुझे।

वर्मा तकरीबन पैंतालीस की उम्र का दरमियाना क़द-काठी वाला एक लंपट आदमी था। पक्के रंग और अपनी निरंतर बढ़ती तोंद के बावजूद वर्मा अनाकर्षक नहीं था। उसके चेहरे पर एक रईसी रूआब था। फ्रेंच कट दाढ़ी फबती थी। आँखों पर सुनहरी ऐनक, कलाई पर दामी 'राडो' घड़ी, गले में मोटी चेन और दोनों हाथों की कम-अज़-कम छह उंगलियों में कीमती पत्थरों की अंगूठियाँ। कभी बग़ल से गुज़रता तो लगता सेंट में डूबकर आया है।

वर्मा की आचरण संहिता में कुछ भी निषिद्ध नहीं था। वो बेझिझक आती-जाती औरतों पर फूहड़ फब्तियाँ कस सकता था। ऊंची सीटी बजकर भदे इशारे के साथ बाई आंख दबा सकता था और होली-मिलन के बहाने महिला टोली में घुसकर उत्पात कर सकता था। उसकी गिद्ध नज़र का आतंक ऐसा था कि देखते ही लड़कियाँ अपनी



छाती पर दुपट्टे ढांपने लगतीं।

बावजूद इन खूबियों के वर्मा एक कम उम्र की लड़की ले आया, ये एक खलबली थी। संभवतः किसी को उससे ऐसी भी नंगई की उम्मीद न थी। मुझे भी उससे दो-चार होने की इच्छा थी। कि यूँ ही मैंने एक शाम उस बला को छत पर देख लिया और वो शाम मुझे आज भी याद है।

प्रायः हर शनिवार वर्मा का आकर्षक टेरेस एक 'बार' में तब्दील हो जाया करता था। मोहल्ले में चार मकानों को जोड़कर बने इस कोठीनुमा घर की छत पर डेहलिया, मोगरे और मधुमालती की बहार थी। हल्की नीली रौशनी, मदहोशी भरा मद्दिम संगीत और इंपोर्टेड स्कॉच के साथ वर्मा के कुछ रईस मित्र। दृश्य लगभग वैसा ही था.....किंतु आज मित्र लापता थे। वर्मा रोस्टेड मुर्गे की टंगड़ी दांतों से उधेड़ता हुआ स्कॉच के घूंट भर रहा था और बग़ल में बेंत के मोढ़े पर बैठी वो बला उसके अमरीकन एस्किमो के साथ अठखेलियाँ कर रही थी।

सुगंधा!

थी भी यूँ कि नाम लेते ही महक उठो। नपी-तुली देह, घुंघराली लटें, सुतवां नाक, पैनी कटार-सी आँखें! मैं देखती रह गई।

जाने क्या हुआ कि ठीक अगली शामपहली बार मैं वर्मा के फाटक पर थी।

'मधु सदन'!....अपनी नाम की चमचमाती तख़्ती की तरह मैसेज वर्मा दरवाज़े पर मौजूद थी। कुछ रूखा-खुरदरा-सा चेहरा लिए। आज भी चौड़ी मांग में गाढ़ा सिंदूर और कलाई भर चूड़ियाँ! सहानुभूति की एक तेज़ लहर बड़े ज़ोर से उठी और मेरे अंतस को भिगाती गुज़र गई। मैसेज वर्मा प्रेमभाव से हाथ थाम मुझे भीतर ले गई। घर की साज-सज्जा वर्मा के उत्कृष्ट चयन की कहानी कह रही थी। मैं चुपचाप नरम काउच में धंस गई। बिना किसी लाग-लपेट मैसेज वर्माजी की निकालने लगी। बीच-बीच में जब वो बिलखती तो मैं असहज हो जाती। दाई से पेट नहीं छिपता और औरत से पति का चरित्र....किंतु मैसेज वर्मा जाने किस फेर में थी कि पति को समझ न सकी। या फिर उनकी नज़र में पहली बार वर्मा अपनी परिधि से बाहर हुआ था।

कोई आधा घंटा रोने-बिसूरने के बाद अचानक उन्हें मेज़बानी याद आई। गिरस्स रास्सज.....उन्होंने फटी मर्दाना-सी आवाज़ में पानी के लिए हांक लगाई किंतु गिरिराज नदारद। वो पानी भूलकर पुनः सुगंधा की बेहयाई का हिसाब गिनाने लगी। मेरी आँखें लगातार सुगंधा को ढूँढ़ रही थीं। खासे इंतज़ार के बाद मैं उठने ही को थी कि किसी छलावे की तरह वो सीढ़ियों पर प्रकट हुई।

“आप मुझसे मिलने आई हैंहैं ना”? वो शायद नहाकर निकली थी। उसके बालों के कोर गीले थे। उन कोरों से टपकती पानी की बूँदें टप-टप उसके पीले दुपट्टे में गुम हो रही थी। मुझे बारिश में भीगते अमलतास के गुच्छे याद आ गए।

“क्या लेंगी?”

“बस...कुछ नहीं।”

“कुछ नहीं...फिर कभी।” वो इटलाकर बोली। “आज कुछ भी।”

उसने आवाज़ नहीं एक मीठी टेर लगाई।

“रास्सजकहां हो ?”

नाटे क़द का गढ़वाली तुरंत दौड़ता आया। कदाचित अपने नाम को यूं आधा कर देने की ये दरियादिली उसे भा गई थी। मिनटभर में गिरिराज हुक्म बजा लाया। यानि नई मालकिन की सत्ता उसे स्वीकार थी। मिसेज़ वर्मा तन्नाकर उठीं और भड़ाक से दरवाज़ा चौखट पर मार अपने कमरे में मुंद गई।

“बेचारी...बहुत परेशान हैं।” मैंने खेद व्यक्त किया।

“हां.....औरत के पास मर्द को काबू में रखने का एक हुनर होता है....और वो उसे नहीं जानती इसलिए।”

एकदम सीधा-सपाट, करारा लहज़ा। मैं अवाक् रह गई। कुछ रोष भी हुआ।

“ग़लती से इस परेशानी की वजह तुम हो।”

उसने तसल्ली से कोका कोला गिलासों में उड़ेली और मेरी ओर बढ़ाकर निहायत ही संजीदगी से बोली।

“वजह हो, सकती हूं.....मगर ग़लती से नहीं। ईश्वर मेरी खुशकिस्मती है।”

उसके चेहरे पर ग्लानि का लेश भी न था। मैं सोचती रह गई कि उस थुलथुल काले भुजंग में इसने ऐसा क्या देखा कि वो उसका सौभाग्य बन गया।

अम्मा मेरी इस उद्वृडता से सख्त नाराज़ थीं। सुगंधा से मेरा ये मेल-जोल उन्हें ज़रा अच्छा न लगा। मैं पिताजी की सिर चढ़ी थी। मेरी सारी उच्छृंखलतायें वो हंसकर टाल देते। अम्मा मन मसोसकर रह जाती। वो जितना झींकती....मैं उतनी ही बगावती होती गई।

चार दिन बीतते न बीतते मैं फिर उसी दहलीज़ पर थी। मिसेज़ वर्मा ने इस बार मेरा स्वागत नहीं किया बल्कि ख़ार खाई नज़रों से घूरकर दोगुने आक्रोश से दरवाज़ा दे मारा। सुगंधा शोभा डे की ‘स्ट्रूज़ ऑब्सेशन’ पढ़ने में तल्लीन थी। मुझे देखकर उसने किताब सिरहाने रख दी और उसकी किरदार अमृता का ज़िक्र ले बैठी। फिर कुछ देर बाद विषय बदल गया और वो वर्मा और अपनी घनिष्ठता की कहानी सुनाने लगी।

“वर्मा में क्या देखा”? आखिरकार मैंने पूछ ही लिया।

“पता नहीं।”

मैं खीझ गई “कुछ पता है?”

“नाईश्वर के सिवा सचमुच कुछ पता नहीं।” वो फ़लसफ़ी अंदाज़ से शून्य में घूरती रही।

मैं द्रवित हो उठी।

“प्यार में ऐसा पागलपन ठीक है?”

उसने बड़े अपनेपन से मेरा हाथ थाम लिया। “प्यार में ठीक क्या और ग़लत क्या.....प्यार का सिर्फ़ एक नियम है ..कि इसका कोई नियम नहीं।”

“और भविष्य?”

“जो होपरवाह नहीं।”

वो अपनी रौ में कहती गई।

“मैं नदी हूं और वर्मा समंदरउसमें विलय हो जाना ही मेरा भविष्य है।”

और बस्स मेरे दिल में घर कर गई सुगंधा। ठीक उसी रात मैंने अपनी ‘सुगंधा’ का पहला अध्याय लिखा था।

सचमुच ही मर्द को काबू करने के मामले में सुगंधा बड़ी हुनरमंद निकली। वर्मा बदल गया था और उसकी गिद्ध नज़र भी। यहां-वहां ताक-झांक की लत छूट गई थी। वो सुगंधा का दुमछल्ला हो गया था। भला क्यों न होता, अपने रूप, चातुर्य और अदाओं की लाठी से वो वर्मा क्या उस जैसे दर्जनभर को एक साथ हांक सकती थी किंतु उसका असल हुनर देखना तो अभी बाकी था।

अचानक एक अफ़वाह ये उड़ी कि वर्मा इस्लाम क़बूल कर सुगंधा से निकाह की फिराक में है। बस वर्माइन के तोते उड़ गए। वो पंगलाई-सी तुझ-मुझ से मशविरा करती फिर रही थी। कि कोई तो उस बला से मुक्ति की राह सुझा दे। अभी तक वो इस रिश्ते को मियादी बुखार की तरह जांचकर बैठी थी पर अब नदी चढ़ रही थी। उनका सब कुछ बहा ले जाने को तत्पर।

कॉलोनी में एक थे मणिकांत वशिष्ठ! पैंतीस की उम्र के सुदर्शन युवक, समाजसेवी और पीड़ित महिलाओं के उद्धारक। औरतों के ख़ास प्रिय किंतु औरत के कड़े परहेजी। औरतें या तो उनकी माताएं थीं या बहनें या बेटियां। उनके लिए औरत के इतने ही मायने थे। बजरंगबली के पक्के भक्त थे मणिकांत पंडित। हनुमान चालीसा उन्हें जबानी याद थी। अम्मा तो उनकी बलाएं लेंते न थकती थी। एक तो कुलीन ब्राह्मण दूसरे कर्मकांडी। साल में नवरात्रि पर दो बार भगवती जागरण का ज़िम्मा उन्हीं के कंधों पर था। गाहे-बगाहे अम्मा को ‘रामायण’ भी बांच दिया करते थे। अम्मा की मणिकांत में अंधी श्रद्धा थी। इतनी कि मुझे कभी कहीं जाना होता तो अम्मा उन्हें मेरे साथ कर देती। इस विशेष अनुकंपा की एक और वजह थी उनका छोटा भाई रविकांत वशिष्ठ। कमाऊ और संस्कारी। अम्मा उसमें मेरा भविष्य देखती थी।

ख़ैर हुआ यूं कि मिसेज़ वर्मा ने मणिकांत के सामने मदद की गुहार लगाई और उन्होंने सरेआम उनके उद्धार की सौगंध उठा ली। फिर तो वक्त-बेवक्त कभी औरतों की टोली सुगंधा को प्रवचन देने निकल पड़ती और कभी मर्दों का जत्था वर्मा को धर लेता। बहुतेरी ऊंच-नीच समझाई.....पर नतीजा सिर्फ़। दोनों अटल रहे। अब सुगंधा को खदेड़ना मणिकांत की प्रतिष्ठा का प्रश्न बन गया। उसने खुलकर उसके खिलाफ़ मोर्चा खोल दिया।

लड़ाई धर्म और अधर्म की थी और सुगंधा अधर्मी थी। आंदोलन में सब एक तरफ़ थे, मैं एक तरफ़। इधर मेरी ‘सुगंधा’ फल-फूल रही थी.....अपनी महक से सबको महमहाने को बेचैन।

इस बार होली का हुड़दंग हुआ और खूब हुआ। भांग चढ़ाकर बिंदास नाची भीगे चुनर वाली।

गई दोपहर तक वर्मा के फाटक पर मनचलों का जमावड़ा लगा रहा। बेचारी वर्माइन होलिका-सी जलती रही। कुछ मनचलों पर सुगंधा को रंगने का फितूर चढ़ गया। बस वर्मा बिगड़ैल सांड-सा फ़ैल गया। गाली-गलौज और सिर-फुटोव्वल की नौबत आ गई। कहीं से जुमला



उछला, "तेरी लुगाई लगती है क्या बे?" नशतर-सा तंज सीधा वर्मा के दिल पर लगा। नशे का अपमान बोध, तिस पर सुगंधा का सम्मोहन। वर्मा को ताव आ गया। वो दनदनाता हुआ भीतर गया और बजाय चुटकी-भर सिंदूर के वर्माइन की डिबिया से मुट्ठी-भर सिंदूर लिए दनदनाता हाज़िर हुआ। और फिर सब धक्क रह गए।

"लो हो गई लुगाई....और कुछ?"

सिंदूर में रंगी सुगंधा सहमी खड़ी थी।

अचानक मिसेज वर्मा हिस्टीरियाई अंदाज़ में छाती पीटने लगी। रोवाराहट मच गई। वाह रे हिंदुस्तानी बीबी! पति तन-मन बांटे मंजूर.... लेकिन सिंदूर...ये भला कैसे संभव था। सब्र का बांध टूट गया। सौतिया डाह में भभकती वर्माइन मरखनी गाय बन सुगंधा से भिड़ गई।

इधर मणिकांत पंडित बिफर गएहिंदू विवाह की पवित्रता का ऐसा मखौल! पत्नी के ज़िंदा रहते ये अधर्म! वर्माइन लगातार बिसुर रही थी। एक आंदोलन-सा भड़क उठा। इसके अगुआ थे मणिकांत पंडित। कई पत्थर सन्नाकर आए तथा वर्मा और सुगंधा को लहलुहान कर गए।

नौटंकी का दूसरा भाग सुगंधा को खेलना था। लोग सन्नाटे में थे कि अब और क्या कुछ होने को है। सुगंधा गीले दुपट्टे से वर्मा का खून पोछ रही थी। खुद उसके माथे पर रक्त और सिंदूर का संगम हो रहा था। वो थके कदमों से मिसेज वर्मा के पास आई, निकट रखी पानी की बाल्टी सिर पर उड़ेलकर भरे गले से बोली।

"सच कह रही हूँ.....मेरा आपसे कोई बैर नहीं... मुझे आपका सिंदूर नहीं चाहिए।"

मंथर चाल से चलती भीतर चली गई।

"बस अब इस बेगैरत को यहां नहीं रहने देंगे।"

मणिकांत ने फुतवा सुना दिया।

भीड़ असमंजस में थी मिसेज वर्मा का ओहदा तो सुगंधा को नहीं ही चाहिए..... तो फिर!

इस आपा-धापी में जाने कैसे पुलिस आ गई। मामला गंभीर था। ले देकर किसी तरह रफ़ा-दफ़ा हुआ।

इस घटना के बाद कुछ दिन अम्मा का सूजा हुआ मुंह देख सुगंधा की तरफ़ मेरे पैर न उठे।

"कोयले की खदान में कालिख से नहीं बच सकती लाड़ो।"

अम्मा को मेरी इज़्ज़त की फ़िक्र थी पर मेरे लिए सुगंधा कोयले की खदान नहीं थी। वो पावन गंगा-सी निर्मल थी। उसमें कुछ तो था ज़रूर कि मैंने अम्मा के ताने-उलाहने सुने, लोगों की हिकारत-भरी आंखें देखी, अपने चाल-चलन पर शंकाएं सहीं पर उसका साथ न छूटा।

मैं उसके लिए चिंतित रहने लगी। मैं सोचती किसी भी तरह उसकी छवि बेदाग़ कर दूँ।

"तुम बदनाम हो, मिसेज वर्मा इज़्ज़तदार क्योंकि उनके पास वर्मा का नाम है....और तुम्हारे पास नहीं।"

वो बेलौस हंस पड़ी। एक बेहया-सी हंसी जैसे कहना चाहती होउनके पास वर्मा का बस नाम है ...वर्मा तो मेरे पल्लू में बंधा है। वो नाम को बटुए में रखकर खुश रहे किंतु प्रत्यक्ष मैं बोली

"नाम ..मतलब!"

फिर मेरी तरफ़ देखकर खोई-सी बोली, "सिंदूर, चूड़ियां,मंगलसूत्र? ये सब तो ढकोसले हैं। इनके बिना भी तो मैं वर्मा की हूँजो नहीं हूँ तो फिर ये बवाल क्यों?"

"तुम बावली हो।"

"तुम भी कभी होकर देखो ...इस बावलेपन में बड़ा मज़ा है।"

मैं झल्ला उठी।

"वो तुम जैसा सिरफिरा नहीं.....आवारा भंवरा है।"

"तो मैं उस जैसी हो जाऊँ?" वो फिर भक्क से हंस पड़ी।

"चलो मैं ही तितली बन जाती हूँ।"

मैं कुछ समझी कुछ नहीं।

सुगंधा को क्या कहूँ मैंइतनी जटिल जितनी आकाशगंगा!

इतनी निश्चित जितनी कोयल! इतनी मुक्त जितनी हवा! और इतनी रंगीन जितनी तितली!

होली वाली घटना के बाद सुगंधा के प्रेम को कुछ लोगों की मान्यता मिल गई। वर्माइन भी कुछ ठंडी पड़ गई थी। हाँ, अम्मा और मणिकांत की घृणा जल चुकी रस्सी के बलों की तरह थी। जाने के आसार ही न दिखते थे। मेरी 'सुगंधा' अपने ऊरुज पर थी। बस ऊहापोह थी तो एक उपयुक्त अंत की जो सुगंधा को युग-युगों तक जीवित रखे। मैं दिलोजान से सुगंधा को रचने में जुटी थी। दिन-रात बस खयालों में वही रहती थी।

मगर वो जाने कैसी सुबह थी!

आधी रात तक कागज़, कलम और सुगंधा के साथ उलझने के बाद सूरज चढ़ने तक सोए रहना उन दिनों आदत-सी हो गई थी। सवेरे सवेरे अम्मा का झिंझोड़कर जगाना बहुत नागवार लगा। मिचमिची आंखों में देखने लायक झिरी बनाकर मैं भन्नाई।

"क्या हुआ?"

"होना क्या हैतितली फुर्र हो गई।"

"क्याsss?" मेरी नींद हिरन हो गई।

"अकेली नहीं।" अम्मा ने दूसरा बम फोड़ा

"तो! ...क्या वर्मा भी?"

"ना.' इस बार अम्मा की आवाज़ डूबी हुई-सी थी। मैं उनका चेहरा ताकने लगी।

"मणि पंडित।"

अम्मा ने मरियल आवाज़ से कहा।

"क्या कह रही हो अम्मा!"

मेरा सिर घूम गया। अगर पलंग की पुश्त न थाम लेती तो निश्चित ही तयौराकर गिर जाती। इतने रूमान अफ़साने का ऐसा अधम अंत!

'सुगंधा' का ये अंत मुझे स्वीकार्य न था।

वर्मा की तिजोरी, बैंक-खाते सब ख़ाली....ना नक़्दी बची थी ना कोई ज़ेवरात।

"गया... सो गया।"

वर्माइन खुश थी...वर्मा तो बचा। मणिकांत पंडित बात का पक्का निकला। मिसेज वर्मा का उद्धार कर गया। उधर बेचारा वर्मा सिर धुन रहा था, इधर मेरा अबोध कचपचा अनुभव नदी के प्रचंड प्रवाह में गाँते लगा रहा था। मुझे बड़ी फ़ज़ीहत मालूम हुई। हफ़्तों मैं घर से बाहर न निकली। ग़नीमत थी तो एक....कि चोट अम्मा को भी लगी थी और घायल हुआ था ऊंच जात पर उनका गुरु।

अब अम्मा अपना ब्राह्मण पुराण नहीं बाँचती.....ना ही मैं किसी को परख लेने का दम भरती हूँ।

मणिकांत और सुगंधा!

ये गठजोड़ क्यों, कब और कैसे हुआ, कोई नहीं जानता किंतु आधी-अधूरी सुगंधा आज भी मेरी दराज़ में बंद पड़ी है। □

यह, वह देश तो नहीं

देवेन्द्र चौबे

मॉरिशस डायरी का यह पाठ 2010 में मॉरिशस प्रवास के दौरान लिखा गया। इस बीच लगातार वहां के लेखकों और अध्येताओं से बातचीत होती रही। इस दौरान डायरी की पांडुलिपि पुस्तकाकार रूप में तैयार हुई। इसी बीच वहां से कुछ लेखकों और छात्रों का जे एन यू भ्रमण एवं अध्ययन के सिलसिले में आना हुआ। वर्ष 2014 में भारत की साहित्य अकादमी ने वहां के प्रसिद्ध हिंदी लेखक अभिमन्यु अनंत को अपनी महत्तर सदस्यता प्रदान किया। पिछले दिनों जे एन यू की पूर्व छात्र और आजकल विश्व हिंदी सचिवालय, मॉरिशस में कार्यरत देविना अक्षयबर ने इसके कुछ अंशों को पढ़ा और एक टिप्पणी भी लिखी। इससे इस डायरी को समकालीन बनाने में मदद मिली। उन सबके प्रति आभार। यहां उद्धृत अंश अप्रकाशित डायरी के बीच के पाठ हैंलेखक

आज सुबह मैं ज्योंहि नहा-धोकर तैयार हुआ, किसी ने मेरे दरवाजे पर दस्तक दी। क्रीम कलर का सफारी सूट पहने, आंखों में उसी रंग का चश्मा, सिर पर हैट, पैर में जूता पूरे टीप-टॉप में मुस्कराता हुआ एक चेहरा मेरे सामने खड़ा था। एकदम अप-टू-डेट!

'बलराम टकोरीजी?' आज वही मुझसे मिलने आने वाले थे। मॉरिशस के रंगमंच के क्षेत्र में जाना-पहचाना नाम है। पहले वे स्कूल के इंसपेक्टर थे। अब रिटायर्ड होकर पूरा समय थिएटर में दे रहे हैं। उनकी अपनी एक थिएटर अकादमी है जिसकी ओर से वह प्रतिवर्ष दो-तीन नाटकों को खुद लिखते और मंचित करते हैं। जापान के हिंदीप्रेमी और नाटककार टोमियो मिजोकामी हमारे मिलन के सूत्रधार थे। वह मॉरिशस टकोरीजी के निमंत्रण पर आ चुके हैं और उनकी नाट्य प्रस्तुतियों को मॉरिशस के निवासियों ने खूब सराहा था। उन्होंने बलराम टकोरीजी की तारीफ की थी, उन्हें सामने देखकर अच्छा लगा। विनय, गुलशन और राज हीरामन के बाद वह पहले व्यक्ति थे, जो मेरे यहां आए थे, "आइए ..."

"चौबेजी?" उन्होंने कमरे में आते हुए कहा, "आपको देखकर बहुत अच्छा लगा। फोन पर बात करके एक जिज्ञासा हुई थी कि कैसे होंगे आप! हम जरूर मिलें।"

"हां..." मैंने कहा, "मिजाकामीजी ने आपकी तारीफ की थी।"

"उन्हें मैंने जापान से मॉरिशस बुलाया था। पूरी टीम के साथ आए थे। सारी व्यवस्था हमने की थी।" उन्होंने बताया, "यहां उनका शो



भी अच्छा रहा। हमने कोई टिकट नहीं रखा..." वह बता रहे थे, "सोचा था, सौ-डेढ़ सौ लोग आएंगे, पर देखते-देखते इंदिरा गांधी कला केंद्र का पूरा हाल भर गया। करीब छह सौ लोग थे।"

"अच्छा!" मुझे भी अच्छा लगा कि मॉरिशस में थिएटर के प्रति इतना उत्साह है।

"दरअसल, लोग यह देखने आए थे कि जापानी हिंदी तो बोल लेते होंगे, पर नाटक कैसे करेंगे? पर लोगों ने खूब सराहा। अगले दिन अखबार के फ्रंट पेज पर उनकी खबर थी।"

"बहुत अच्छा!" अब हम लोग बात करने लगे थे, "आजकल आप क्या लिख रहे हैं?"

"एक नाटक का रिहर्सल चल रहा है। प्रधानमंत्री से मुख्य अतिथि के रूप में आने के लिए कहा है। 26 मार्च या 2 अप्रैल।"

"अगर 26 मार्च को तय हो जाता है तो मैं भी रहूंगा। मेरा वापसी का टिकट 27 मार्च का है।"

"ठीक रहेगा! पर देखिए, वहां से कौन-सा डेट मिलता है।"

"इस नाटक में क्या दिखाने जा रहे हैं? कुछ अप्रवासी का भी मसला है?" मैंने अपनी दिलचस्पी ज़ाहिर की।

"हां! पूरा नाटक इन्हीं सवालों पर है। मैंने प्राचीन से लेकर अब तक का इतिहास उठाया है कि कैसे अंग्रेज बिहार जैसे प्रांतों में एजेंट के रूप में मजदूरों की तलाश में जाते हैं। उन्हें प्रलोभन देते हैं कि मॉरिशस चलो! पत्थर हटाओगे तो सोना मिलेगा! उनकी यह बात सुनकर मजदूरों की आंखों में चमक आ जाती है और वह यहां आने को तैयार हो जाते हैं। कलकत्ता से उन्हें जहाज पर बिठाया जाता है।" वह बता रहे थे, "धूप, बरसात, तूफान, हवा के बीच उनका सफर शुरू होता है। डेक पर उन्हें दूस-दूस कर रखा गया है। उसी में कई मजदूर बीमार पड़ जाते हैं। बीमारी फैलने का डर दिखाकर उन्हें समुद्र में फेंक दिया जाता है। महीनों की यात्रा के बाद



अभिमन्यु अनंत के साथ लेखक

जहाज मॉरिशस पहुंचता है।" थोड़ा रुके थे वे, "कुछ बातें मैंने सूत्रधार के रूप में कही हैं, यहां उतरते ही अब अंग्रेज का रूप दूसरा है। जो अंग्रेज बिहार, उड़ीसा में उनकी खुशामद कर रहे थे, यहां उन्हीं के हाथों में अब चाबुक है। एक-एक करके मजदूरों को उतारा जाता है। उनका

एजेंट रजिस्ट्रेशन करने के लिए उनका नाम पूछता है-

“ऐ क्या नाम है, तुम्हारा?”

“डरा, सहमा हुआ कमजोर और बेबस मजदूर कहता है साहब कार्तिक।”

“कार्तिक?” अंग्रेज पूछता है, फिर लिखने वालों से कहता है, “लिखो, कार्तिक!”

“अब कार्तिक, यहां आकर काटक हो जाता है। उनके नाम बदल जाते हैं। उनकी पहचान सिमट जाती है फिर उन मजदूरों को धक्का देकर यहां के जमींदारों के हाथ में सौंप दिया जाता है। एक साथ आए मजदूर-भाई, पिता, पुत्र अलग-अलग जमींदारों के साथ अलग-अलग इलाकों में भेज दिए जाते हैं। उनके रिश्ते टूट जाते हैं। वे बिछड़ जाते हैं।” वे थोड़ी देर के लिए ठहरते हैं।

“मतलब, वे एक नई दुनिया में आकर खड़े हो जाते हैं, जहां उनके अपने भविष्य के नाम पर कुछ भी नहीं है।”

“हां, यहां के उनके उत्पीड़न का दूसरा दौर शुरू होता है। उनके काम का, खाने का, पानी पीने का समय तय होता है। उनको पत्थर हटाना पड़ता है, सोना नहीं मिलता कि आखें सिकुड़ जाती हैं। वहां उन्होंने लालच दिया था कि सोना मिलेगा। उसी की आशा में दुःख-तकलीफ सहते वह यहां आए थे। उन्हें सोना नहीं मिलता है। काम के बीच प्यास के लिए जब रुकते हैं तब पीठ पर कोड़ा पड़ता है। वे चीखते हैं, पर उनकी सुनने वाला कोई नहीं। शाम को थके-हारे ये मजदूर जब अपने स्थान पर जाते हैं तो उनका सहारा बनता है ‘हनुमान चालीसा’, वे हनुमानजी से प्रार्थना करते हुए कहते हैं कि उन्हें संकट से उबार दो तो इस प्रकार एक दौर समाप्त होता है। बाद में 1900 के आसपास गांधी आते हैं, इनके अंदर उत्साह भरते हैं कि अपने बच्चों को पढ़ाओ। उन्हीं में से एक मजदूर के अंदर यह बात घर कर जाती है। मोहित रामगुलाम अपने बच्चे को पढ़ाना चाहते हैं। बाद में जब गांधीजी गुजराती वकील मणिलाल डॉक्टर को शहर भेजते हैं तो इनके जीवन में आशा की धारा फूटती है। यहां से एक दूसरा दौर शुरू होता है, उन्हीं मोहित रामगुलाम का बेटा शिवसागर रामगुलाम पढ़कर आगे बढ़ता है और बाद में, 1935 में जब विलायत से डाक्टरी पढ़कर वापस लौटता है तो मजदूरों की दशा और दिशा बदलने के लिए काम करता है। 1950 से लगातार वह उनकी आवाज उठाना शुरू करता है और जब 1968 में देश को अंग्रेजों से मुक्ति मिलती है तो प्रधानमंत्री बनता है। उन्हें जनता ‘फादर ऑफ द नेशन’ की उपाधि देती है। वह लोगों की हालत बदलने के लिए बहुत मेहनत करता है। उन्हें घर, बीमारी के लिए इलाज, नौकरी आदि उपलब्ध कराता है। आज (2010) के प्रधानमंत्री नवीनचंद्र रामगुलाम के पुत्र हैं। यहां आकर नाटक समाप्त होता है।”

मैं सुनते-सुनते इतना मुग्ध हो गया था कि पता ही नहीं चला कैसे घंटाभर बीत गया। मैंने उनसे आग्रह किया कि मुझे नाटक की स्क्रिप्ट उपलब्ध करवा दें कि उसे भी अपने प्रोजेक्ट का हिस्सा बना सकूँ। लौटते वक़्त जब मैं उनके साथ पोर्ट लुई में स्थित नेशनल लायब्रेरी जा रहा था, तब उनसे ढेर सारी बातें हुईं। पोर्ट लुई का आज का इतिहास उन्होंने बताना शुरू किया, “छह-सात बजे के बाद सबकुछ सुनसान हो जाता है जबकि लोग रहते हैं। दुकानों के पीछे लोगों के घर हैं। उत्तर

तरफ़ मुसलमानों की आबादी अधिक है पर शहर शाम होते ही शांत हो जाता है।”

आज मैं एमजीआई लायब्रेरी में काम करना चाहता था, इसलिए कहीं नहीं गया। यहां के प्रकाशन से कुछ पुस्तकें भी लेनी थीं, मुझे विजयलक्ष्मी तिलक की ‘मॉरिशस हिस्ट्री’ अच्छी लगी थी। इस पुस्तक में उन्होंने शुरू से लेकर आधुनिक काल के मॉरिशस का इतिहास प्रस्तुत किया है। उनकी पुस्तक की तारीफ़ पिछली बार विनई गुदारी ने किया था। पुस्तक थोड़ी महंगी थी, भारतीय हिसाब से करीब 900 रुपए। मेरे पास पैसे भी अब समाप्त हो रहे थे। फ़ेलोशिप 15 मार्च के पहले नहीं आएगी, इसलिए इसी में मुझे काम चलाना था पर किताब अच्छी है, इसलिए ले लिया।

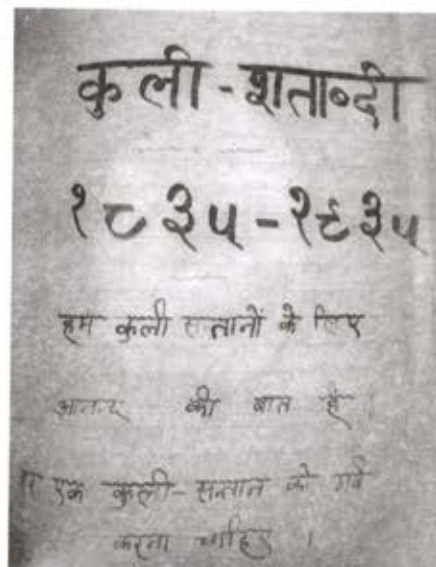
आज लंच के बाद विनई और संध्या विश्वविद्यालय चले गए। गुलशन की भी क्लास थी। साथ में रह गए अरविंद बिस्सेर और जय गणेश पांडेय। दोनों भोजपुरी विभाग में कार्यरत हैं। वहां पहले सुचिता रामदीन थीं। अरविंद उत्साही हैं। मॉरिशस ब्रॉड कास्टिंग कारपोरेशन में भी पार्ट-टाइम कार्य करते हैं। रेडियो एफ़.एम. पर उनकी प्रस्तुति बहुत आकर्षक है। पिछली बार उन्होंने हमें भोजपुरी गाने के कैंसेट दिए थे जिसे हम बार-बार सुनते हैं। वापसी में उनसे ढेर सारी बातें हुईं। चाय पीने के बहाने हम भोजपुरी विभाग में आ गए।

यहां का भोजपुरी विभाग 5 बाई 10 फीट के कमरे में है। पहले यह अध्यक्ष का कमरा हुआ करता था। उनके, सुचिता रामदीन के रिटायर्ड होने के बाद पूरा विभाग इसी कमरे में स्थानांतरित कर दिया गया। सदस्यों के बैठने वाले कमरे को रजिस्ट्रार के लिए आरक्षित कर दिया गया है। इससे इन दोनों युवा अध्यापकों के चेहरे पर निराशा के भाव देखे जा सकते हैं पर उनके अंदर के उत्साह ने मुझे आकर्षित किया।

“हमसे कहा जाता है कि यह करो, वह करो!” अरविंद थोड़ा नाराज़ भी लग रहे थे, “कैसे करें? सामग्री संकलन के लिए समाधान तक नहीं है। एमबीसी की रिकार्डिंग सेट के आधार पर मैं डाटा कलेक्शन कर रहा हूँ। पहले टेप में होता था, अब हम सीडी में कर रहे हैं। पहले तो यहां छात्रों के लिए कोई प्रोग्राम तक नहीं था। हमने इंस्ट्रक्शन टू भोजपुरी कोर्सेस विश्वविद्यालय के छात्रों के लिए शुरू किया। यह आप्शनल है। इसमें लोग आते हैं। इससे भोजपुरी का प्रचार भी हो रहा है।”

“डाटा कलेक्शन में आप क्या करते हैं?” मैंने पूछा, क्योंकि इंडिया डायस्पोरा सेंटर के कार्यक्रम में जयगणेश पांडेय ने बताया था कि अब बस पुराने लोगों में असली भोजपुरी बची हुई है। वे ब्लॉग्स जो भोजपुरी में जाते हैं, धीरे-धीरे लुप्त हो रहे हैं। उन सबके जाने के बाद इस परंपरा को आगे ले जाने वाला कोई नहीं है।

“हम पुराने लोगों से बात करके उनके रीति-रिवाज, अनुभव आदि को रिकार्ड करते हैं। अब जैसे एकबार एक महिला ने बताया कि उसका कम उम्र में विवाह हो गया था। उसकी सास उससे काम कराना चाहती थी, जबकि ससुर कहता कि अभी खेलने-कूदने की उम्र है। जब वह अपने उम्र के लोगों के साथ खेलती तो लोग कहते देखो, फ़लाना की बहू खेल रही है। गांव में चर्चा होती। एक दिन उसकी सास ने कहा, जाओ ‘हसुआ’ लाओ। इस नाम से वह परिचित नहीं थी। उसके यहां इसे कुछ और नाम से पुकारते थे। वह अंदर जाकर परेशान हो गई। इस पर सास ने कहा कि यह भी नहीं पता है? उसे खूब डांटा-फटकारा।



भारतीय मजदूरों का एक दस्तावेज़

उस दिन वह बहुत रोई। कुछ वर्ष बाद उसके सास-ससुर गुजर गए। अब वह खुद घर की मालकिन हो गई, अब उसे खुद खेत में जाना था। जब पहली बार हंसुआ लेकर खेत में गई तो काम शुरू करने के पहले, 'हंसुआ' देखकर फिर रोने लगी कि तुम्हारे चलते एक दिन मैं रोई थी, अब तो तुम मेरे अन्नदाता हो गए हो?"

अरविंद ने बताया कि "ऐसी अनेक लोककथाएं लुप्त हो रही हैं। हम इनका संकलन करते हैं।"

"प्रकाशन क्यों नहीं करते?" मुझे जिज्ञासा हुई, "ऐसी किताबें कहाँ मिलेंगी?"

"नहीं हैं। प्रह्लाद रामशरण ने कुछ संकलित किया है, पर वह हिंदी में हैं। शायद दिल्ली के राजकमल प्रकाशन ने उसे प्रकाशित किया है। मैं उनका अनुवाद भोजपुरी में करना चाहता हूँ।" अरविंद ने कहा।

"अनुवाद क्यों करना चाहते हैं?" मैंने कहा, "खुद संकलित करके लिखिए। जो नहीं मिले, उसे साधारण ले लीजिए।"

अरविंद सोचने लगे। फिर उनके चेहरे पर एक चमक दीखी, "हां, यह तो अच्छा है। फिर उनका प्रकाशन भी हम भोजपुरी में करेंगे..."

"हां।"

अरविंद पी-एच.डी. करना चाहते हैं। कुछ ऐसा विषय लेना चाहते हैं जिसमें उनका एमबीसी का काम भी चलता रहे।

दरअसल मॉरिशस में स्त्रियों का संसार इतना बड़ा है कि उन पर असंख्य काम हो सकते हैं। अरविंद से बातचीत करके लगा कि लोककथाओं के माध्यम से स्त्रियाँ एक नए संसार को रचती और बनाती हैं। उन परंपराओं को जीवित रखती हैं जिससे उनका अपना समाज गतिशील रहे। जहाँ पर हर वस्तु के लिए उचित स्थान और सम्मान हो। हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनेक निबंधों में लोक के इसी रूप को बचाने की चिंता दिखलाई पड़ती है। लेखक की यह भूमिका भी होती है कि वह लोक में मौजूद उन चीजों को संरक्षित करे, जिसको समाज धीरे-धीरे भूलता जा रहा है। अरविंद संकलन के नाम पर यह महत्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं। मैंने उन्हें सलाह दी कि ऐसे ही विषय को लेकर काम करें। सभी ही, मॉरिशस के भोजपुरी भाषा और साहित्य का एक इतिहास लिखने का प्रयास करें। वह उत्साही और समझदार हैं। ऐसा कर सकते हैं। उन्हें देखकर लग रहा था कि वे और उन जैसे युवक ही मॉरिशस के भोजपुरी भाषा और साहित्य का भविष्य हैं जैसे गुलशन सुखलाल और विनई गुदारी हिंदी के। इन युवा प्राध्यापकों में काम करने और काम को समझने का अतिरिक्त उत्साह है। शायद इसलिए हम सब एक-दूसरे से जुड़ते जा रहे हैं।

एमजीआई के गेस्ट हाऊस में खाना नहीं मिलता है। कोई रहता ही नहीं है। देश छोटा है। इसकी दक्षिणोत्तर लंबाई करीब 72 किलोमीटर है और पूर्व-पश्चिम की चौड़ाई 47 किलोमीटर। क्षेत्रफल 1152 किलोमीटर। आबादी करीब 13 लाख से ऊपर है। आप देश के किसी भी कोने में डेढ़ से दो घंटे में पहुँच सकते हैं। इसलिए कोई भी सुबह काम से आता है और सारा काम पूरा करके शाम तक घर पहुँच जाता है। यहाँ संस्थान का या सरकारी कर्मचारियों के लिए बनाए गए क्वार्टर नहीं हैं। सब अपने घरों में रहते हैं। यहाँ तक कि प्रधानमंत्री भी शाम के चार-पाँच बजे काम करने के बाद अपने घर चले जाते हैं। कुछ लोगों ने ज़रूर गाँव छोड़कर शहर में घर बना लिया है, पर अभी भी अधिकांश लोग गाँव से आते हैं। जिनके बच्चे शहर चले जाते हैं, उनके माँ-बाप अकेले पड़ जाते हैं। विवाह के बाद आमतौर पर लड़की या लड़के अपना घर अलग बना लेते हैं। यहाँ की मशहूर कथाकार भानुमति नागदान ने इस समस्या पर कई कहानियाँ लिखी हैं लेकिन जो गाँव में माँ-बाप के साथ रहते हैं, उन्हें लंबी यात्राएँ करके कार्यालय आना पड़ता है। इसीलिए उनकी यात्रा एक तरफ़ की तीस-चालीस

किलोमीटर हो जाती है। सुबह में आठ बजे ऑफिस पहुँचना, फिर छः बजे तक घर-सब मिलाकर यहाँ के कार्यरत लोगों के पास समय नहीं है। इसीलिए मिलना-जुलना या तो रविवार को या सार्वजनिक कार्यक्रम अथवा मंदिरों में होता है।

इसलिए एमजीआई के गेस्ट हाऊस में बाहर के देशों से आए लोग ही ठहरते हैं। कई बार तो यह पूरा खाली ही रहता है। इधर कई दिनों से मैं भूत की तरह अकेला रह रहा हूँ। शाम में छुट्टियाँ होने के बाद कोई बात करने वाला नहीं मिलता है। विनई ने कहा कि उनके साथ रहूँ पर एकाध दिन की बात होती तो उनके घर रह भी जाता परंतु मेरा प्रवास लंबा था, इसलिए गेस्ट हाऊस में ही रहना तय किया। हाँ, वहाँ खाने की समस्या है जिसका कोई उपाय नहीं है।

आज मैंने तय किया था कि रात का भोजन खुद बनाऊँगा। यहाँ के रेस्तराँ में जो भोजन मिलता है, उनमें हल्दी का प्रयोग कम होता है। स्वादिष्ट तो एकदम नहीं होता! सोचा कम-से-कम आज पीली-तीखी जीरे एवं मिर्च की फोरन वाली खिचड़ी की व्यवस्था की जाए। बगल के सुपर मार्केट गया चावल, काली मिर्च आदि लिए। हाँ, हल्दी के अनेक रंग वहाँ दिखाई पड़े। एक लिया पर कुछ संदेह हुआ तो हल्दी जैसा एक पैकेट लेकर स्टोर मैनेजर से पूछा कि क्या उन्हें भोजपुरी या अंग्रेज़ी आती है? यहाँ के लोग हिंदी कम, भोजपुरी में बात समझ लेते हैं। आम बोलचाल की भाषा क्रियोल है।

"हां-हां, आवेला!" उन्होंने कहा। फिर पूछा, "बोल?"

मैंने हल्दी का पैकेट दिखाया, "ना, ना, यह हल्दी ना है।" फिर, मेरे साथ हल्दी ढूँढने लगे। इस तरह उनकी मदद से मेरी ख़रीददारी हुई। सारा सामान लेकर जब गेस्ट हाऊस आ रहा था, जोड़ने लगा कि सारा सामान लिया या नहीं? अचानक ख़याल आया कि दाल तो ली नहीं फिर खिचड़ी कैसे बनेगी? दोबारा सामान लेने जाने का साहस नहीं था, विश्वविद्यालय के कैटीन को फोन किया, क्योंकि सात बज गए थे। उसके बाद खाना समाप्त हो जाता है और वे फिर 7.30 बजे शाम तक दुकान बंद कर देते हैं। मेरी आवाज़ वह पहचान गए हैं। प्रबल ही थे, हाँ, डियर ब्रदर, प्लीज कम एंड इट!" फिर क्या था, भागते-भागते करीब बीस मिनटों में मॉरिशस विश्वविद्यालय की कैटीन पहुँचा। खाना मिल गया।

लेकिन, इस प्रकार आज फिर, मेरे खाना बनाने की योजना असफल हुई।

आज एमजीआई के हिंदी के छात्रों को साहित्य के इतिहास पर व्याख्यान देकर जितना खुशी हुई, उतनी ही निराशा, उनसे संवाद न हो पाने के कारण हुई। कि कुछ छात्रों ने कोशिश की पर बात ठीक-ठाक नहीं बन पाई। वे सवाल नहीं थे और न ही टिप्पणियाँ। इसलिए उनसे विदा लेकर जब विभागाध्यक्ष राजरानी गोबिन से ये बातें शेयर की तब उन्होंने बताया कि प्रथम वर्ष तो ठीक है परंतु दूसरे वर्ष के साथ दिक्कत है। लड़के मेहनत नहीं कर रहे हैं।

"मैंने तो एक लड़की को झाड़ा कि तुम्हारे माता-पिता मछली की फ़ैक्टरी में काम करते हैं और बहुत मुश्किल से पैसा इकट्ठा करते हैं। क्यों, उनके पैसे को बर्बाद कर रही हो?" उन्होंने कहा, "उसके बाद उस पर थोड़ा असर हुआ और उसने कक्षा में आना शुरू किया।"

यद्यपि यह सच है कि छात्र मेहनत नहीं कर रहे हैं पर कारण क्या है? यहाँ लड़के-लड़कियाँ हिंदी पढ़ने आते हैं पर घर में भोजपुरी या क्रियोल बोलते हैं। माता-पिता से उसी भाषा में बातें होती हैं। हिंदी एक तरह से उनके लिए विदेशी भाषा की तरह हो जाती है। इंटर कॉलेज तक उनकी जड़ मज़बूत नहीं हो पाती है। वे क्या करें? घर के बाहर का माहौल भी हिंदी लायक नहीं है। संस्थान के अलावा उन्हें हिंदी में बातचीत करने का मौका कम ही मिल पाता है।

कक्षा में मेरे साथ हिंदी के अध्यापक लाल बिहारीजी बैठे रहे। वे सज्जन व्यक्ति हैं। उन्होंने छात्रों से मेरा परिचय कराया। उनकी दिलचस्पी भाषा विज्ञान में है। बनारस से पढ़ाई करने के बाद उन्होंने लंबे समय तक प्राइमरी कक्षाओं में पढ़ाया और मेहनत, लगन से महात्मा गांधी संस्थान में लेक्चरर बन गए। उनके व्यक्तित्व में कोई दुराग्रह नहीं है बल्कि उनके साथ थोड़ी देर के लिए बैठी हिंदी की ही अध्यापक रघुनंदनजी भिन्न विचार वाली लगें। यद्यपि चाय उन्होंने अच्छी पिलाई।

आज दिन में संस्थान की एक और बैठक में भाग लेने का मौका मिला। उन दिनों तमिलनाडु के एक मंत्री मॉरिशस की यात्रा पर आए थे। इसीलिए उनको लेकर संस्थान के अध्यक्ष और निदेशक की तरफ से हाल में एक कार्यक्रम था। कार्यक्रम में लोगों में कोई उत्साह नहीं दिख रहा था। ऊपर से मंत्री महोदय ने तमिल में बोला। अनुवाद की प्रस्तुति भी अधूरी थी, किसी को कुछ समझ में नहीं आ रहा था। वहां गर्मी भी बहुत थी। दो बजने जा रहा था। बच्चे भागने को व्याकुल थे और इधर मंत्री महोदय का भाषण था कि समाप्त ही नहीं हो रहा था। 2.30 बजते-बजते छात्रों का पलायन शुरू हो गया परंतु, कुछ लोग आखिर तक बैठे रहे। गुलशन और विनई की कक्षाएँ थीं, इसीलिए वे सब भी 3 बजते-बजते चले गए। मैंने विनई से कहा कि जब आप एम जी आई के निदेशक बनेंगे तब ऐसे ही बोर करेंगे। उसने आंखें फैलाकर मेरी तरफ देखा, फिर कहा, “ऐसा नहीं होगा!”।

पर, वहां एक व्यक्ति से मिलकर मुझे अधिक खुशी हुई। वहां के एम.पी. और संसद के मुखर वक्ता सुरेंद्र दयालजी जो कि मंत्री के साथ आए थे। आज बोले तो नहीं, परंतु बहुत ही ओजस्वी वक्ता हैं। लेबर पार्टी से हैं जिसकी आजकल सरकार है। उनसे थोड़ी देर तक बातचीत हुई। उन्होंने मुझे अपना कार्ड और व्यक्तिगत नंबर दिया। मुझे लगता है ऐसे लोग राजनीति में आए तो देश आगे जाता है। वे देश के भविष्य हैं आज जिस तरह की राजनीति हो रही है, उसमें व्यक्ति की प्रतिबद्धता देश और समाज के प्रति कम, अन्य चीजों में अधिक होती जा रही है। इससे देश कमजोर होता है। समाज भी। परिणामतः व्यवस्थाएं चरमराने लगती हैं परंतु सुरेंद्र दयालजी अलग तरह के नेता हैं। देश के बारे में सोचते हैं। वे अगर इसी तरह काम करते रहें तो उनका देश और आगे जाएगा। तरक्की करेगा।

पता नहीं क्यों, कई बार मनुष्य का मन पागलों की तरह कार्य करता है। तब और अधिक, जब जीवन का एकाकीपन उसके जीवन का हिस्सा बनने लगता है। इस हालत में आदमी भीड़ का हिस्सा होना चाहता है। वह भटकता है, और भटकते ही जाता है। कई बार भीड़ उसे अपना नहीं पाती। यह घड़ी मनुष्य के लिए संकट की होती है। वह भागना चाहता है, पर भाग नहीं पाता! वह उस सामाजिक भीड़ का हिस्सा बनना चाहता है, पर बन नहीं पाता! अजीब स्थिति होती है, यह जीवन में! भटकना शायद उसकी नीयति होती है। इसलिए, निरुद्देश्य घूमता आदमी कोई सामान्य मनुष्य नहीं होता। तब सामाजिक प्रक्रिया का हिस्सा बनना उसका ध्येय होता है। कारण, यहां से उसका प्रस्थान ही तय करता है कि वह समाज का हिस्सा बनकर विकल्पहीनता को नष्ट करेगा अथवा पलायन करके अध्यात्म की तरफ जाएगा।

आज छुट्टी का दिन था। संस्थान की पश्चिम दिशा की तरफ जाने वाली सड़क को देखकर मेरे मन में बार-बार यह उत्सुकता होती कि यह कहां तक जा रही होगी! मन किया कि आज इस पर भटका जाए! सो, शहर की तलाश में लालोरा जाने वाली सड़क पर मैं दूर तक चला गया। अगर बरसात नहीं हो तो यहां धूप बहुत कड़ाके की होती है। सड़क की दाहिनी ओर कई जगह गन्ने के खेत मिले। इस सड़क पर लोगों के बड़े-बड़े फार्म हाऊस हैं। इनके बारे में कहा जाता है कि ये मॉरिशस के रईस व्यक्तियों का इलाका है। जहां कात्रबोन मध्यवर्गीय लोगों का शहर है, वैसे ही मोक्का, अमीरों का। अगर विनई का 6.10 बजे में फोन नहीं आता तो मन था शहर की तलाश में और आगे तक

जाऊंगा और वापसी में बस या टैक्सी ले लूंगा। पर विनई ने कहा, गेस्ट हाऊस में इंतजार कर रहे हैं। इसलिए लौटने को मुझ पर पहुंचने में कम से कम चालीस मिनट लगते। सामने से आती एक मोटी पर नाक-नक्शे में सुंदर लड़की से उस जगह का नाम पूछा।

उसने कहा, ‘एल्विस’, और आगे बढ़ गई। मन किया, उसे दूर तक जाते देखता रहूं पर सामने इतनी तेज़ धूप थी कि आंखों ने साथ छोड़ दिया पर, तेज़ धूप से बचना संभव नहीं था। लौटती बार आंखों पर शाम की तीखी धूप पड़ रही थी, इसीलिए आसमान की तरफ देखा ही नहीं परंतु ज्योंही संस्थान के पास का पेट्रोल पंप आया, निगाहें ऊपर उठ गईं। नीले आसमान में कई जगह सफेद बादलों के टुकड़े स्थिर खड़े, ध्यानमग्न थे। उनमें कोई हलचल नहीं थी। जब संस्थान के करीब पहुंचा तो अचानक आसमान में अद्भुत दृश्य नज़र आया। सफेद बादल टापुओं की तरह हल्का लाल-पीला हो गए थे लेकिन उनकी बनावट ठीक टापुओं जैसी ही थी, उनके बगल में खड़ा नीला आसमान, ठीक समुद्र की तरह लग रहा था। लग रहा था कि आसमान से समुद्र धरती पर उतर रहा है! अद्भुत दृश्य!! मन-ही-मन प्रार्थना की कि आसमान में काले बादल न आए पर संयोगवश ऐसा हो नहीं पाया। धीरे-धीरे आसमान काले बादलों से घिर गया। यह मॉरिशस के लिए सामान्य बात है, कब धूप हो जाए और कब बरसात, इसकी भविष्यवाणी सिर्फ प्रकृति ही कर सकती है। यहां का मौसम विभाग नहीं पर संकट करीब आ पहुंचा था। बरसात कभी भी हो सकती थी। और संस्थान के गेस्ट हाउस तक पहुंचना जरूरी था। शायद इस जैसे देश की जनता इसी बात का इंतजार करती है कि कब संकट हो और कब उससे मुक्ति मिले। कहा जा सकता है कि यह देश इन चीजों का अभ्यस्त हो गया है। इसीलिए लोग बहुत चीजों को गंभीरता से नहीं लेते। मस्त रहते हैं। घर से दफ्तर, दफ्तर से घर और फिर ढेर सारी व्यस्तताएं! क्रिया-कलाप!

व्यस्तता यहां के लोगों में गुज़ब की है। इसका कारण क्या है, यह कभी समझ नहीं पाया। मंदिर यहां की सामाजिक गतिशीलता के केंद्र हैं। ऐसा नहीं कि लोग भारत की तरह अंधभक्त हैं या पूरा का पूरा ईश्वरवादी! मंदिर जाना यहां के लोगों के लिए एक दायित्व की तरह है कि उससे जुड़े रहें। भारत से आए पुजारियों पर ये अटूट श्रद्धा रखते हैं। उनकी संस्कृत वाणी इन्हें धर्ममय बनाती है। इसीलिए ऐसे पंडितों को दान भी खूब मिलता है, जो बढिया से संस्कृत बोल सकें। इनके यहां भक्त भी खूब इकट्ठा होते हैं। कुछ दिन उन्होंने निर्धारित कर रखे हैं जैसे मंगलवार को हनुमानजी की पूजा, सोमवार को शिवमूर्ति का महाभिषेक, रविवार या बृहस्पतिवार को सत्यनारायण कथा आदि। यहां आयोजक चाहे व्यक्ति हो या मंदिर, भक्तों को प्रसाद खाना की तरह भरपेट मिलता है। हां, कोई-न-कोई उसका प्रायोजक होता है। इसीलिए मंदिर से जुड़े कार्यक्रम में देश के बड़े-बड़े नेता, मंत्री, यहां तक कि राष्ट्रपति-प्रधानमंत्री भी आते हैं। इससे उनका जनता से संपर्क बना रहता है और लोग वहां सीधे अपनी बात उनसे कह पाते हैं। यह अच्छी बात है कि उनके आने पर सुरक्षा को लेकर आम जनता को कोई परेशानी नहीं होती। आप आराम से उनके आने के बाद आइए और उनके जाने के पहले कोई जरूरी काम है तो निकल जाइए। उनके सुरक्षाकर्मी मुश्किल से एक या दो होते हैं। वे भी दूर-दूर खड़े रहते हैं। इसीलिए जब भारत से कोई मंत्री आता है तो उन्हें थोड़ा अजीब लगता है। हां, उनकी यात्रा में जरूर फ्लाईंग स्कवायड बाइक पर आगे-आगे जाते हैं और पीछे-पीछे मंत्री की गाड़ी परंतु, इससे आम लोगों को परेशानी नहीं होती। किसी को रोका भी नहीं जाता है। यह एक ऐसी खूबी है जिसने मुझे मॉरिशस में बार-बार आकर्षित किया। शायद हर देश का समय और समाज अपनी सामाजिक गतिशीलता के अनुरूप कार्यशैली ढूंढ लेता है। मॉरिशस ने भी ऐसा ढूंढ लिया है। इसीलिए यहां का जीवन और लोग अत्यंत सरल हैं। □

संपर्क : भारतीय भाषा केंद्र, जे एन यू, नई दिल्ली-110067 मो. 09868272999

साहित्य बचा रहेगा

(अलका सरावगी से अरविंद कुमार की बातचीत)

कई साल पहले साहित्य अकादमी पुरस्कार आपके पहले उपन्यास पर मिला था। इस बीच आपके चार और उपन्यास आ गए। पुस्तक मेले में आपका एक नया उपन्यास आया है। कृपया हिंदी के पाठकों को यह बताएं कि इस उपन्यास की कथावस्तु क्या है और किस रचनात्मक दबाव के तहत आपने यह उपन्यास लिखा है?

ब्लब यह सब कहता है: इक्कीसवीं सदी की यह गाथा एक स्त्री और एक पुरुष के बीच संवाद और आत्मालाप से बुनी गई है। यहां सिर्फ सोच की उलझनें और उनकी टकराहट ही नहीं, आत्मीयता की आहट भी है किंतु यह संबंध इंटरनेट की हवाई तरंगों के माफ़ूत है, जहां किसी का अनदेखा, अनजाना वजूद पूरी तरह एक धोखा भी हो सकता है। अलबत्ता यह धोखा भी है तो ऐसा, जो एक-दूसरे के जीवन को देखने के नज़रिए को उलट-पलट कर रख दे। यहां तक कि दो व्यक्ति एक-दूसरे के सपनों में भी आवाजाही कर लें।

आज भी आतंकवाद के हर हादसे पर हैरत होती है कि किसी आस्था, तर्क या सिद्धांत की गिरफ्त में कोई ऐसे कैसे आ सकता है कि किसी की जान लेने या खुद अपने ही चिथड़े उड़ाने को राजी हो जाए। एक सच्ची-झूठी गाथा उस मानस तक पहुंचने की कोशिश है, पर बिना फ़ैसला या फ़तवा दिए, क्योंकि इस सदी की राजनीति में भी अन्याय वैसे ही व्याप्त है और उससे जूझने के तरीके हिंसा में ही समाधान खोजते हैं।

यह गाथा पाठकों को एक साथ कई अनचीन्ही पगडंडियों की यात्रा कराएगी। कई बार उन्हें ऐसी जगहों पर ले जाएगी, जहां आगे जाने का कोई रास्ता नहीं दिख रहा लेकिन यह जोखिम उठाना खुद के अंदर के और बाहरी ब्रह्मांड की गहरी पहचान करवाएगा (एक ऐसी तृप्ति के बोध के साथ, जो सिर्फ दुस्साहस और नई अनुभूतियों को जीने के संकल्प से ही मिल सकती है। प्रेम, मित्रता, स्त्रीत्व, बतरस, लेखकी और सत्य के नए परिप्रेक्ष्य इस अनात्मकथा में खुलते रहेंगे और फिर धुंधले होकर लुकते-छिपते रहेंगे।

हिंदी में उपन्यासों की एक लंबी परंपरा है। ज़ाहिर है उपन्यास लिखते समय आपके ज़ेहन में वो लंबी परंपरा रही होगी। आप अपने उपन्यास लेखन का उस परंपरा के बीच किस तरह प्रक्षेपित करती हैं, उस परंपरा से क्या ग्रहण करती हैं?

बेशक हिंदी के लगभग सारे महान उपन्यास मैंने पढ़े हैं और अंग्रेज़ी के भी। परंपरा का हिस्सा होते हुए भी लेखक एक बदले हुए

समय की नब्ज़ को पकड़ने की कोशिश में जानता है कि उसे अपने समय की कथा को अपने ही तरीके से बताना होगा। बाकी परंपरा में स्थापित करना आलोचक का काम है। लेखक सिर्फ परंपरा का आभारी होता है। किस्सागोई कहिए या अनेक समयों की कथा को बुनने की कला या एक साथ कई कथावाचकों का होना, 'महाभारत' की कथा का कोई मुक़ाबला नहीं है।

आपने '84 के आसपास लिखना शुरू किया था तो उस समय परिवृश्य पर ममता कालिया, चित्रा मूव्गल, मृदुला गर्ग जैसी उपन्यासकार सक्रिय थीं। आप उस बाद की पीढ़ी की लेखिका हैं। आपने अपनी पूर्ववर्ती पीढ़ी से अलग किस रूप में लिखना चाहा?

मैंने 1990 से लिखना शुरू किया। मेरे मन में हिंदी लेखिकाओं जैसी कोई कैटेगरी ही नहीं थी। न मुझे लगा कि मेरा मकसद सिर्फ महिलाओं की कथा लिखना है। किसी से अलग लिखने की बात ही कैसे होती!

अब हिंदी में आपके बाद लेखिकाओं की एक और पीढ़ी आ गई जिसमें मनीषा कुलश्रेष्ठ, अल्पना मिश्र और कविता जैसी रचनाकारों ने भी उपन्यास लिखना शुरू किया। आखिर स्त्रियां उपन्यास को क्यों विषय बना रही हैं? एक लेखिका के रूप में आप क्या सोचती हैं?

लेखन में उपन्यास विधा की अपनी ताकत है। इसे जीवन का महाकाव्य कहा गया है। महिलाएं भला उससे क्यों दूर रहें?

लेखिकाओं की शिकायत रहती है कि हिंदी साहित्य में पितृसत्तात्मक ढांचा काम करता रहा है और हिंदी आलोचना ने उनका समुचित नोटिस नहीं लिया या मूल्यांकन नहीं किया। आप का क्या

कहना है?

व्यक्तिगत तौर पर मुझे ऐसा कभी नहीं लगा।

स्त्री-विमर्श में पितृसत्तात्मक ढांचे पर प्रहार तो किया जाता है लेकिन बाज़ार और उपभोक्तावाद के बढ़ते प्रभाव की आलोचना कम की जाती है। क्या ये सब स्त्री को नए प्रलोभन देकर उसे गुलाम बनाने की साजिश नहीं?

गुलाम तो सब हैं बाज़ार के। क्या स्त्री क्या पुरुष! पुरुष विमर्श क्या इसे केंद्र में रखकर देख पा रहा है? या आप रोटी बनाने की तरह इसे स्त्रियों के ही काम में शुमार करना चाहते हैं?

हिंदी में जो कुछ लिखा जा रहा है और जिस तरह का परिवृश्य बन रहा है। बड़ी तादाद में नए लेखक आ रहे हैं। इस परिघटना को आप किस रूप में देखती हैं?



राष्ट्रभाषा का उज्ज्वल भविष्य दिख रहा है क्या? या बस अब पाठक की कमी दिख रही है कि हमारी किताबें लाखों की संख्या में नहीं बिक रही!

आम तौर पर कहानीकार-उपन्यासकार कविताएं कम पढ़ते हैं। आप कविता की कैसी पाठक रही हैं?

मैंने तो रघुवीर सहाय पर पीएच-डी. की है। मुक्तिबोध को तो रोज़ पढ़ना चाहती हूँ। हनुमान चालीसा की तरह। मेरे नए उपन्यास में पात्रों की बहुत-सी कविताएं आती हैं।

आप कोलकाता में पली-बढ़ीं। वहां के जीवन और संस्कृति तथा हिंदी समाज एवं वहां की रचनाशीलता के बारे में बताएं।

मैंने अपनी मां को शिवानी और आचार्य चतुरसेन तथा रानू के उपन्यास पढ़ते देखा। ताई मैथिलीशरण गुप्त पढ़ती थीं। पिता बच्चन को घोंटे हुए थे। घर में 'धर्मयुग' और 'हिंदुस्तान' पत्रिकाएं आती थीं। कमोबेश ऐसा ही सब मारवाड़ी घरों में था। कई घरों में लाइब्रेरी होती थी। अंग्रेजी की पुस्तकें भी मिल जाती थीं।

महापंडित राहुल.....

पृष्ठ 23 से आगे

राहुलजी के ख़त आज कहा हैं, इसका कोई पता-ठिकाना नहीं है। मेरी जीवन यात्रा के दूसरे भाग में राहुलजी ने मिस्टर सूथर के साथ अजंता, एलौरा की यात्रा की थी। सांची में फिर दोनों की भेंट हुई। यह 1628 की बात है। लिखा है : "सूथर अमरीका चले गए और मैं दुनिया में कहां-कहां भटकता रहा; लेकिन वर्षों तक हम अपने पत्रों द्वारा एक-दूसरे से मिलते रहे।" (यात्रा 2 / पृ.22) ऐसे ही पत्रों द्वारा राहुलजी जर्मनी में फ्रांकफ़र्ट में ठाकुर इंद्र बहादुरसिंह और मारवुर्ग में डॉ. ओटो से मिलते रहे। मिस्टर वाटलवर्थ, श्री सका किवारा, भदन्त आनंद कौशल्यायन आदि से 1928 से मौत तक हुए राहुलजी के पत्र-व्यवहार कहां हैं, यह क्यों लोगों के घरों में दबे या फिके पड़े हैं?

डॉ. महादेव साहा का राहुलजी से लंबा संबंध रहा है। राहुलजी की बीमारी में उनकी पत्नी लोला सांकृत्यायन और पुत्र ईगोर राहुलोविच ने कई सौ पत्र डॉ. साहा को लिखे थे। बिना इन ख़तों को पढ़े कोई राहुल के जीवन और उनके वैज्ञानिक मानस पर शायद ही काम कर सके।

संस्मरण भी राहुलजी के संपर्क में आए लोगों ने बहुत कम लिखे हैं। क्यों यह उदासीनता डॉ. विद्यानिवास मिश्र, स्व. हजारी प्रसाद द्विवेदी, स्व. डॉ. उदयनारायण तिवारी ने आज तक कायम रखी हैं। विद्यानिवास मिश्र ने शासन-शब्द में राहुल के कार्य करने की शैली देखी है। वह कैसे काम करते थे, यह उनके संस्मरण से ही पता लग सकता है। लोला सांकृत्यायन ने सोवियत-संघ के जीवन के संस्मरण लिखे भी थे, जिसे कोई उनसे ले गया और वापस नहीं किया। यह बात मुझे डॉ. प्रभाकर माचवे से पता लगी। नागरी प्रचारिणी सभा के सभापति थे गृहमंत्री गोविंदबल्लभ पंत। विश्वकोश का संपादक राहुलजी को उन्होंने नहीं बनने दिया। क्यों स्व. हजारी प्रसादजी ने उस समय का संस्मरण नहीं लिखा? राहुलजी कम्युनिस्ट थे और गोविंदबल्लभ पंत तिकड़मी राजनैतिक थे। क्या पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने जानकर उस वक्त की सच्चाई पर पर्दा डाला था! याह वह भी तिकड़म के सहारे बड़े बने लोगों के हित-साधक थे!

कलकत्ता के हिंदी समाज की रचनाशीलता का अनुमान मुझे एक लेखक बनने के बाद ही हुआ। अशोक सेकसरिया जैसे प्रबुद्ध लोग यहां थे। यहां की हवा में ही रचनात्मकता और एक किस्म की रोमांटिकता है। अलबत्ता बहुत सारे लोग छायावाद के प्रभाव में ही रह गए। बाकी मार्क्सवादी हो गए। फिर भी प्रभा खेतान और मधु कांकड़िया दिखाई दीं जो अलग लिख रही थीं और यह सिर्फ स्त्री-विमर्श ही नहीं था।

आज जब राजनीति और बाज़ार तथा मीडिया सबकुछ लीलने को तैयार है, साहित्य इस समाज को कैसे बचा पाएगा? क्या साहित्य की भाषा और शिल्प को बदलने और पाठकों से नया रिश्ता जोड़ने की ज़रूरत नहीं है?

साहित्य बचा रहेगा, यह तो तय है। और वह बदलते समय में नई भाषा-शिल्प गढ़ेगा ही। पाठकों से रिश्ते के नए आयाम सोशल मीडिया ने भी खोले हैं। □

संपर्क : अलका सरावगी : 2/10, सरत बोस रोड, कोलकाता-700020
अरविंद कुमार : म. नं. 1016, सेक्टर-13, वसुंधरा, गाज़ियाबाद-201012
मो. 9968400416

आज सोचता हूँ 1893 ई. में ग्राम पनदहा, ज़िला आजमगढ़ में जो व्यक्ति जन्मा था, 6 बैशाख कृष्ण 2020 (सोमवार 15 अप्रैल 1963) में उसके 70 वर्ष पूरे होते हैं। क्या ये 70 वर्ष हमारे इतिहास के परीक्षण-वर्ष नहीं थे? क्या राहुलजी, जीवन की व्यापक भूमि पर, इन 70 वर्षों तक जातीय चेतना के विकास के लिए अग्निपरीक्षा नहीं देते रहे? परिवार से विच्छिन्न युवक, समाज में उपेक्षित एक व्यक्ति और पूरी भूमि जहां तक पृथ्वी है, अपने पैरों से नापनेवाली अदम्य अभिलाषा यही तो जीवनयात्रा है।

1910 ई. में राहुलजी 17 वर्ष के थे। हिमालय में वह गंगोत्री में थे। आज का पश्चिम युरोप और अमरीका में युवक हताश और डरा हुआ है। गांजा और चिलम पीकर ऐसे नकली संत वहां बढ़ रहे हैं। उस समय राहुलजी ने ऐसे नकली संतों को बहुत नज़दीक से देखा था। उस समय भी वह ठोस ज़मीन पर थे। लिखा है : "जान पड़ता है, उनका बेफ़िक्री का स्वच्छंद जीवन, उनकी एक तल पर आपस में बैठने की भेदभाव शून्य चाल.... उनकी मार्ग की कष्टों को आवाह्न करने की बेकुरारी और उनकी कल से बिफ़िक्री इतनी ठोस चीज़ें थीं, जिनके कारण तस्वीर के दूसरे रुख पर मेरा ध्यान ही नहीं जाता था।"

यह स्वभूमिज ठोस ज़मीन है। यह विकासशील सभ्यता की कथा है।

मैं आज भी धारा के विपरीत बहते हुए एक अदम्य विश्वास को अपने में महसूस कर रहा हूँ। आज राहुलजी के कार्य से हम अपने इतिहास पर अधिक विश्वास के साथ गर्व कर सकते हैं। मुझे पता है, राहुलजी के कार्यों पर गर्व करने वाले इस देश में, आज भी बड़ी संख्या में हैं और रहेंगे।

(साभार : 'इन लोगों के मध्य से') □

संपर्क : ई-11, गली नं. 5, सादतपुर, दिल्ली-110090, मो. 9810481433

रूपहले पर्दे की मलिका

ज्ञान प्रकाश पांडेय

24 फरवरी 2018 रविवार का दिन भारतीय सिनेमा जगत का वो मनहूस दिन था जब रूपहले पर्दे की महान अदाकारा श्रीदेवी का दुबई में एक होटल के स्नान टब में डूबने से आकस्मिक निधन हो गया। इस समाचार से न केवल भारतीय सिनेमा जगत बल्कि उनके करोड़ों चाहने वाले अस्तब्ध रह गए। हमेशा चुस्त-दुरुस्त, सुंदर व मुस्कुराती दिखने वाली श्रीदेवी का इस तरह अचानक दुनिया को अलविदा कह देना ऐसा शायद किसी ने नहीं सोचा था। महान कलाकार श्रीदेवी का जन्म 13 अगस्त 1963 को तमिलनाडु के शिवकाशी के मिनमपट्टी गांव में हुआ था।



उनके पिता का नाम अटयपन और मां का नाम राजेश्वरी था। पिता पेशे से वकील थे। मां तेलुगु एवं पिता तमिल होने के कारण उन्हें बचपन से ही तमिल और तेलुगु भाषा पर असाधारण अधिकार था। 'होनहार वीरवान के होत चिकने पात' की कहावत को चरितार्थ करती श्रीदेवी 1967 में बाल कलाकार के रूप में मात्र चार साल की उम्र में एक तमिल फिल्म 'कंधन-करुणाई' से अपने अभिनय कैरियर की शुरुआत की। अपने अभिनय को जारी रखते हुए उन्होंने 1977 में तेलुगु फिल्म 'बंगारक्का' में बाल अभिनेत्री के रूप में अभिनय किया तो वहीं 1969 में मलयालम फिल्म 'संभवान' में अभिनय किया। 1975 में श्रीदेवी ने 'जूली' के अभिनय में एक बाल अभिनेता के रूप में सराहनीय प्रदर्शन किया, जिसमें उन्होंने मुख्य अभिनेत्री की छोटी बहन की भूमिका निभाई थी। वर्ष 1977-83 तक उन्होंने प्रसिद्ध तमिल सुपरस्टार कमल हसन के साथ दक्षिण भारत के फिल्मों में काम करते हुए एक अद्वितीय भूमिका निभाई और दक्षिण भारत की अभिनेत्रियों में अति लोकप्रिय हो गई। अब तक अभिनय के क्षेत्र में श्रीदेवी एक जाना पहचाना नाम हो गया था। दक्षिण के प्रसिद्ध अभिनेताओं के साथ-साथ उन्होंने प्रसिद्ध निदेशकों के साथ भी कार्य किया, जिसमें एन.टी.आर., ए.एन.आर., कृष्णाघाट माननी, विषणु वर्धन आदि प्रमुख हैं। इस तरह उन्होंने अपने 50 वर्षों के अभिनय कैरियर में कुल 300 से अधिक फिल्मों में काम किया, जिसमें 62 तेलुगु 58 तमिल और 21 मलयालम के फिल्मों के अलावा 63 हिंदी फिल्मों शामिल हैं। एक पूर्ण अभिनेत्री के रूप में 1976 में उन्होंने तमिल फिल्म 'मुंदरू मुदिची' में काम किया, जिसमें उनकी भूमिका सराहनीय थी। श्रीदेवी को 1971 में बनी मलयालम फिल्म 'मूवी पूमबत्ता' के लिए केरल स्टेट फिल्म पुरस्कार से सम्मानित किया गया और इस तरह उन्होंने तमिल, तेलुगु, कन्नड़ फिल्मों में अपने दमदार अभिनय एवं खूबसूरत काम के लिए कई पुरस्कार अर्जित किए। हिंदी

फिल्मों में अपने फिल्मी कैरियर की शुरुआत श्रीदेवीजी ने 1979 में भारतीय राजा की बनी फिल्म 'सोलहवां सावन' से की थी। तब शायद ही किसी ने सोचा होगा कि कालांतर में यह अभिनेत्री अपने अभिनय कला के बल पर हिंदी सिनेमा जगत में भी अपनी अलग पहचान बनाएगी और लाखों-करोड़ों दर्शकों के दिलों की मलिका बन जाएगी। यूं तो 'सोलहवां सावन' उनका अभिनेत्री के रूप में पहली हिंदी फिल्म थी, लेकिन बॉलीवुड में उन्हें पहचान 'हिम्मतवाला' फिल्म से मिली। इस फिल्म के अभिनेता जितेंद्र थे। इस फिल्म के बाद वह हिंदी सिनेमा की सुपरस्टार अभिनेत्रियों में शुमार हो गईं। अपने फिल्मी कैरियर के दौरान उन्होंने कई शानदार रोल किए। उन्होंने हेमामालिनी अभिनीत फिल्म 'सीता और गीता' की रीमेक 'चालबाज़' में डबल रोल बखूबी निभाया। इसी तरह पंकज पराशर द्वारा निर्देशित फिल्म 'अंजू और मंजू' के किरदार में उन्होंने सभी का मन मोह लिया। वर्ष 1983 में श्रीदेवी दक्षिण सिनेमा के सुपरस्टार कमल हसन के साथ फिल्म 'सदमा' में नज़र आईं। ये वे फिल्में थीं जिन्होंने श्रीदेवी को सफलता की बुलंदियों तक पहुंचाया। इस फिल्म में उनके अभिनय को देख दर्शकों के साथ-साथ फिल्म समीक्षक भी हैरान थे, क्योंकि दक्षिण फिल्म जगत से जब श्रीदेवी ने बॉलीवुड में प्रवेश किया और मुंबई को अपनी कर्मभूमि बनाई तो उन्हें हिंदी अच्छी तरह बोलने और पढ़ने भी नहीं आती थी।



फिल्म : सदमा

यह उनके लिए एक चुनौतिपूर्ण काम था, क्योंकि उस समय कई प्रमुख अभिनेत्रियों को चुनौती देते हुए उन्हें अपना मुकाम हासिल करना था और बॉलीवुड में अपना विशिष्ट स्थान बनाना था, जिनमें दक्षिण भारत की प्रमुख अभिनेत्रियां मीनाक्षी शेषाद्री, जयाप्रदा, रेखा, हेमा मालिनी के साथ माधुरी दीक्षित आदि प्रमुख हैं लेकिन इसके बावजूद हिंदी फिल्म-जगत में उन्होंने सबको पछाड़ते हुए प्रथम लेडी सुपरस्टार बनने का सौभाग्य प्राप्त किया तथा रातों-रात हिंदी की नंबर एक नायिका बन गईं। ये 80 व 90 दशक की पहली ऐसी हिंदी अभिनेत्री थीं जिन्हें उनकी अद्वितीय अभिनय कला के लिए 'लेडी अमिताभ बच्चन' के नाम से भी जाना गया। श्रीदेवी ने हिंदी के जिन फिल्मों में अपने अभिनय कला की जबरदस्त छाप छोड़ी उनमें 'सोलहवां सावन', 'सदमा', 'हिम्मतवाला', 'जाग उठा इंसान', 'अकलमंद', 'इनक़लाब', 'तोहफ़ा', 'सरफ़रोश', 'बलिदान', 'नया क़दम', 'नगीना', 'घर-संसार', 'मक़सद', 'सुल्तान', 'आग और शोला', 'भगवान', 'आखिरी रास्ता', 'जांबाज़', 'वतन के रखवाले', 'जवाब हम देंगे', 'औलाद', 'नज़राना', 'कर्मा', 'हिम्मत और मेहनत', 'मिस्टर इंडिया', 'निगाहें', 'जोशीले', 'गैर कानूनी', 'चालबाज़', 'खुदा गवाह',

'लम्हे', 'हीर रांझा', 'चांदनी', 'रूप की रानी चोरों का राजा', 'चांद का टुकड़ा', 'गुमराह', 'लाडला', 'आर्मी', 'जुदाई', 'हल्ला बोल', 'इंग्लिश विंग्लिश', 'मॉम' आदि प्रमुख हैं।

श्रीदेवी ने 80 और 90 के दशक में बॉलीवुड के प्रायः सभी सुपरस्टार अभिनेताओं के साथ काम किया जिसमें जितेंद्र, राजेश खन्ना, अमिताभ बच्चन, अनिल कपूर, मिथुन चक्रवर्ती, विनोद खन्ना, ऋषि कपूर, अनुपम खेर आदि प्रमुख हैं।

1983-88 के बीच श्रीदेवी ने जितेंद्र के साथ 16 फिल्मों में काम किया जिसमें 1983 में बनी फिल्म 'हिम्मतवाला', 'जस्टिस चौधरी', 'मवाली' तथा 1986 में बनी फिल्म 'वकालत', 'औलाद' 1987, 'सोने पे सुहागा' 1988, आदि सुपरहिट फिल्में थीं। लेकिन 1985 में बनी 'सरफ़रोश', 1988 में बनी 'आग और शोला' तथा 1987 में बनी फिल्म 'हिम्मत और मेहनत' बॉक्स ऑफिस पर फ्लॉप साबित हुई। इसी तरह राजेश खन्ना के साथ श्रीदेवी ने जो सफल फिल्मों की उनमें 'नज़राना' (1987) आदि प्रमुख हैं। 'खुदा गवाह' में अमिताभ बच्चन के साथ उनका अभिनय एक प्रेमिका और पुत्री के रूप में अस्मरणीय और अद्वितीय है। इस तरह श्रीदेवी ने अपने फिल्मी कैरियर में दक्षिण से लेकर बॉलीवुड तक अनेक महान हस्तियों एवं फिल्मी सितारों के साथ काम किया और अपने सफल अभिनय का परचम लहराया। वे पहली ऐसी हिंदी अभिनेत्री थीं जिन्होंने अपने अभिनय हेतु सबसे अधिक कीमत 11 लाख रुपये बोनी कपूर से उनकी फिल्म में काम करने हेतु लिया और वह फिल्म थी 'मिस्टर इंडिया' जो जबरदस्त कामयाब फिल्म रही। इस तरह 1985 से 1992 तक वह बॉलीवुड की सबसे महंगी अभिनेत्री तथा 1993 से 1996 तक वह दूसरी महंगी अभिनेत्री थीं। यह उनके सफल अभिनय कला का जीता जागता दस्तावेज़ है।

'चालबाज़' और 'लम्हे' फिल्म में उन्हें उनके सर्वश्रेष्ठ अभिनय एवं प्रदर्शन के लिए फिल्म फेयर पुरस्कार से नवाज़ा गया। इसी तरह उन्हें 1971 में बनी मलयालम फिल्म 'पुमपट्टा' में सर्वश्रेष्ठ बाल कलाकार के प्रदर्शन हेतु केरल राज्य फिल्म फेयर पुरस्कार प्रदान किया गया तथा वर्ष 1981 एवं 82 में तमिल फिल्मों में सर्वश्रेष्ठ अभिनय के लिए तमिलनाडु स्टेट फिल्म अवार्ड प्रदान किया गया। 1992 में रामगोपाल वर्मा के निर्देशन में बनी फिल्म में उनके सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन हेतु उन्हें सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्री का फिल्म फेयर अवार्ड प्रदान किया गया। इतना ही नहीं उन्होंने तेलुगु और आंध्र प्रदेश का प्रतिष्ठित नंदी पुरस्कार भी प्राप्त किया। प्रारंभ से ही श्रीदेवी का पूरा जीवन संघर्षपूर्ण एवं चुनौतियों भरा रहा।

वर्ष 1991 में उनके पिता जो व्यवसाय से एक वकील थे, के निधन के बाद श्रीदेवी पूरी तरह टूट गई और उनके कंधों पर पूरे परिवार के भरण-पोषण का भार आ गया और वह अपनी मां के सहारे हो गई क्योंकि उनके पिता की वजह से ही उनके कदम आगे बढ़ते रहे। इसलिए इस दौरान उन्हें आर्थिक तंगियों का सामना करना पड़ा। फिर मां के द्यूमर के इलाज के लिए उन्हें विदेश जाना पड़ा जहां बोनी कपूर ने उनकी काफी सहायता की जिसके परिणामस्वरूप उन्होंने 1996 में अपनी उम्र से लगभग आठ साल बड़े फिल्म निर्माता एवं अभिनेता

अनिल कपूर के बड़े भाई बोनी कपूर से शादी कर सबको अचंभित कर दिया। यद्यपि यह बोनी कपूर की दूसरी शादी थी लेकिन श्रीदेवी उनकी दिल की धड़कन थीं। बोनी कपूर से शादी करने के बाद श्रीदेवी ने फिल्मों में प्रायः काम करना बंद कर दिया और फिल्मी दुनिया से दूरी बना ली और पूरी तरह एक सफल पत्नी धर्म का निर्वाह किया। इसी बीच उन्हें दो बेटियां जाह्नवी कपूर और खुशी कपूर हुईं जिनका नाम बोनी कपूर द्वारा निर्देशित फिल्म 'जुदाई' (1997) और 'हमारा दिल आपके पास है' (2000) के नायिकाओं के नाम पर रखा गया। फिर वर्ष 2012 में गौरी शिंदे की फिल्म 'इंग्लिश विंग्लिश' से श्रीदेवी ने रूपहले पर्दे पर अपनी वापसी की। हिंदी सिनेमा जगत से कई वर्षों तक दूर रहने के बाद भी फिल्म 'इंग्लिश विंग्लिश' में जिस तरह उन्होंने बेहतरीन अभिनय किया उसने उनके आलोचकों और दर्शकों को चकित कर दिया। इसी तरह 2017 में उनकी अंतिम फिल्म 'मॉम' आई जिसमें एक मां के रूप में उनका अभिनय भी अति सराहनीय व प्रशंसनीय है। भारत सरकार ने फिल्म-जगत में उनके अतुलनीय योगदान के लिए वर्ष 2013 में उन्हें देश के सर्वश्रेष्ठ नागरिक सम्मान 'पद्मश्री' से सम्मानित किया। इस तरह श्रीदेवी ने एक प्रेमिका, पत्नी, मां के रूप में अपनी भूमिका का बखूबी निर्वाह किया। वह सिने-जगत की एक ऐसी सदाबहार मलिका एवं नृत्यांगना थीं, जो न सिर्फ अपने पति की जान थीं, बल्कि अपने हज़ारों चाहने वाले सिनेमा-जगत के दर्शकों के दिलों की धड़कन



फिल्म : चांदनी

भी थीं। एक बेहतरीन अदाकारा, एक बेहद खूबसूरत नारी, कुछ गुलत कुछ सही निर्णय लेने वाली एक मानवीय स्त्री, एक जुझारू औरत जो जिंदगी के हर मुकाम पर शांति और शिद्दत से बाज़ी जीतती रही। अस्सी और नब्बे के दशक में जिसने भी श्रीदेवी को कुरीब से देखा वह बता सकता है कि उनकी एक झलक आंखों में रोशनी भरने के लिए काफी थी। बला की दिलकश! यूँ लगता जैसे संगमरमर का कोई तराशा हुआ बुत हो।

हिंदी फिल्मों में श्रीदेवी को एक और बड़ी कामयाबी मिली यश चोपड़ा के साथ 'चांदनी' में। यश चोपड़ा पहले रेखा के साथ यह फिल्म बनाना चाहते थे लेकिन 'मिस्टर इंडिया' 'काटे नहीं कटते' गाने में देखने के बाद उन्होंने तय कर लिया कि उनकी चांदनी बस श्रीदेवी ही हो सकती हैं। यश चोपड़ा ने श्रीदेवी के बारे में यूँ कहा था 'इस लड़की के अंदर दर्द का ज्वालामुखी कैद है। वह अपने दर्द किसी से नहीं बांटती। बहुत अंतर्मुखी है। खामोश रहती है। नगमा जुबां पर नहीं उसके दिल में चलता रहता है। जब वह कैमरे के सामने आती, तो जैसे वह ज्वालामुखी फट जाता है और क़यामत आ जाती है।' उन्होंने अपने जीवन में जो शोहरत हासिल किया और सफलता की बुलंदियों को छुआ उसके पीछे उनकी कड़ी मेहनत, लगन एवं ईमानदारी है। 24 फरवरी 2018 की वो दुखद शाम अजीब थी जिसने सिनेमा-जगत की चांदनी को हमेशा के लिए अंधेरे में गुम कर दिया। इस तरह हसरतें दफ़न हो गईं और निर्माता-निर्देशक राम गोपाल वर्मा की वो बातें याद आ रही हैं, 'ऐ खुदा, तेरी शक्रगुज़ार हूँ कि तूने श्रीदेवी को बनाया पर बहुत नाराज़ हूँ कि तूने उनको वापस क्यों बुला लिया।" □

संपर्क : पीआर-18, एम.जी. रेज़िडेंशियल इंकलेव, विश्वविद्यालय परिसर, असम विश्वविद्यालय, सिलचर-788011, मो. 09435175670

सुरेंद्र स्निग्ध की तीन कविताएं

प्रेम एवं मनुष्यता के विरल कवि



समकालीन हिंदी कविता की अग्रगण्य कवियों की भीड़ में अपनी जेनुइन कविताओं से दूर से ही सहृदय अध्येता-पाठकों का अपनी ओर ध्यान खींचने वाले स्मरणीय कवि सुरेंद्र स्निग्ध का बीते वर्ष लंबी बीमारी के कारण आकस्मिक निधन हो गया। उन्होंने कविताओं के साथ-साथ कहानी, उपन्यास, निबंध, संस्मरण एवं आलोचना को लेकर लोगों का पर्याप्त ध्यान खींचा। विभिन्न विधाओं में प्रकाशित उनकी महत्वपूर्ण कृतियों में 'पके धान की गंध', 'कई-कई यात्राएं', 'रचते-गढ़ते', 'अग्नि की लपट से कैसे बचाऊं कोमल कविता', 'मां', कामरेड और दोस्त एवं 'संघर्ष के एस्ट्रोटर्फ पर' (कविता-संग्रह), 'जागत नींद न कीजै' (निबंध) आदि प्रमुख हैं। एक सहज-संवेदनशील कवि और प्यारे इंसान के रूप में ख्यात सुरेंद्र स्निग्ध की कविताओं में प्रेम, क्रांति, संघर्ष, जीजिविषा के विभिन्न अनुभव एवं रंग हैं। वे मूलतः प्रेम व मानवता के विशिष्ट कवि

थे, जो जीवन के अंतिम-अंतिम क्षण तक प्रेम के अहसास को महसूस और मृत्यु को टालते रहे; परंतु अंततः मृत्यु ने उन्हें अपनी आगोश में ले लिया और वे एक अनंत यात्रा पर निकल गए। सुरेंद्र स्निग्ध ने विरल मनोभावों की कविताएं लिखीं जो हिंदी कविता की एक बड़े अभाव की क्षतिपूर्ति करती हैं, उन्हें हमारी अश्रुपूर्ण आंखों से सादर श्रद्धांजलि, उनकी कुछ चुनी हुई कविताओं के साथ—

गहरी नींद के लिए अनंत की ओर

किताबों के कई-कई गटर
बेतरतीब पड़े हुए हैं
इस सुनसान प्लेटफार्म पर

आने ही वाली है ट्रेन
कई तरह की दुश्चिन्ताओं से घिरा खड़ा हूँ
बीमार पत्नी के साथ
इन गटरों के पास

जाना है कहीं दूर

ठसाठस भरे हुए किसी डब्बे में
मैं पत्नी को चढ़ाऊंगा
या इन किताबों को

छूट जाएंगी सारी की सारी किताबें
इसी प्लेटफार्म पर
छूट जाएंगे मिखाइल शोलोखोव
'एंड क्वाइट फ्लोज द डॉन'
के पांचों भागों के साथ

(पढ़ने की हिम्मत ही जुटाता रह गया सब दिन)
प्लेटफार्म पर ही

फट-चिट कर उड़ जाएंगे

'कथा सरितसागर' के सभी भाग

'दास कैपिटल' और लु शून के सभी
वाल्ज्यूम्स

कोई उलटकर भी नहीं देखेगा

मारीना त्स्वेतायेवा की पंक्तियां उड़ेंगी
पन्नों के साथ इधर-उधर

"तुम्हारा नाम..... उफ़ क्या कहूँ

जैसे चुंबन कोमल कुहरे का
सहमी आंखों और पलकों पर
तुम्हारा नाम जैसे बर्फ़ पर चुंबन
झीलें, शीतल झरने के पानी का घूंट
गहरी नींद सुलाता है तुम्हारा नाम"

विपरीत दिशा से आ रही है ट्रेन
धमक रही हैं हम तक पटरियां

ट्रेन रुक गई है आउटर सिग्नल के पास
ख़ामोश हो गई हैं पटरियां
ख़ामोशी पसर रही है
वहां तक
जहां सोया है आकाश
खेतों की मेड़ पर

ट्रेन से उतरा नहीं है एक भी यात्री
पत्नी की कमज़ोर बांहें थाम
मैं लपक पड़ा हूँ ट्रेन की ओर
छोड़ दी है किताबों के छूट जाने की चिन्ता
झटपट एक डब्बे में
किसी तरह चढ़ सके हैं हम

पूरी ट्रेन खाली ही खाली
सभी डब्बों में बैठा है मरघटी सन्नाटा

अचानक तूफ़ान की तरह
दौड़ पड़ी है ट्रेन
जिधर से आई थी
उसी दिशा की ओर

गहरे अवसाद से मैंने देखा पत्नी को
उसकी आंखों से ढलक गई आंसू की बूंदें
फिर किसी अज्ञात भय से
सिमट गई मेरी बांहों में
चिड़िया की नहीं बच्ची-सी

ट्रेन की गति
निरंतर बढ़ती जा रही थी
यह जा रही थी
गहरी नींद के लिए अनंत की ओर।

कर लें मौत-प्रतीक्षा

क्यों पैदा कर दी है तुमने
एक बार पुनः जीने की इच्छा
मेरे जीवन की विशाल बंजर
ज़मीन पर
तुम उग आई हो
बनकर खूबसूरत फूल

तुम्हारे प्यार के विशाल
घने वृक्ष के नीचे
अपने उत्तप्त जीवन में
मैंने पा लिया है शीतल छांह
बैठूंगा कुछ देर
इसी घनी शीतल छांह के नीचे
कहूंगा अपनी मौत से भी
कर ले कुछ देर प्रतीक्षा
अपनी प्रेमिका की बांहों में हटने की
अभी एकदम नहीं है इच्छा
इनकी नहीं सांसों से
अलग करने को अपनी सांसों की
अभी नहीं है इच्छा!

चरवाहा

पिछले चालीस हजार वर्षों से
अपनी गायों को लेकर
कहां-कहां नहीं गया मैं
किन-किन जंगलों
पहाड़ियों, दर्राओं
नदियों और झरनों के समीप

नहीं पहुंचा हूं मैं

इन गायों के भारी धनों से
फूटते हैं दूध के झरने
खिलती है एक नैसर्गिक

दूधिया रोशनी
नहा जाती है संपूर्ण धरित्री

जब-जब बछड़े
हुमक कर पीते हैं दूध
वत्सला बन जाती है पृथ्वी
रचने लगती है नए-नए छंद
छितरा जाता है
संपूर्ण ब्रह्मांड में
ममत्व का अलौकिक रूप

जब भी रंभाती हैं
ये गायें
दहल जाती है पूरी प्रकृति
दुलारती हैं नवजात बछड़े को
धरती के सातों समुद्र
मचल-मचल उठते हैं

आज इस हरे-भरे जंगल में

विपदा में पड़ी हैं गायें
मौत खड़ी है सामने
धरकर भूखी बाधिन का रूप
चौकन्नी हैं गायें
प्यार के सुरक्षित घेरों में
समेट रही हैं एक साथ
रंभा रही हैं एक साथ
पुकार रही हैं मुझे
पुकार रही हैं
सदियों साथ चले
चरवाहा को

जिस तरह
नदियों से मिलने के लिए
उफनती हैं बरसाती जल-धाराएं
हवाओं में घुल जाने के लिए
जैसे पसरती है खुशबू
जीवन के संपूर्ण आवेग के साथ
मैं दौड़ता हूं गायों के बीच

आज मैं दूंगा सत की परीक्षा
लौटेगी नहीं एक भूखी मां बाधिन
मैं स्वयं बनूंगा
उसका आहार

और एक क्षण को
रुक जाएगी पृथ्वी की गति
सूरज और चांद और सितारे
क्षणभर के लिए हो जाएंगे निस्तेज
ब्रह्मांड की संपूर्ण गतियों के साथ
रुक जाएगी
मेरे हृदय की गति
मरूंगा
वीर वीसु राउत की तरह

गायों के धनों से
स्वतः प्रस्फुटित दुग्ध-धार
और आंखों से ढलके आंसुओं के साथ
कोसी नदी की उफनती जल-धारा के संग
बह जाएगा
बचा-खुचा, क्षत-विक्षत मेरा शव

पृथ्वी पुनः हो जाएगी गतिशील
दिक्-दिगत तक फैल जाएंगी हरियालियां
कभी सूखेंगे नहीं आंसू, रुकेगा नहीं दूध
ममता और करुणा की बेली लहराती रहेगी
लहराता रहूंगा युगों तक ध्वज की तरह
मैं-विसु राउत।

बारिश में

पृष्ठ 36 से आगे

सदमा लगा। उसने घर में रखी कोई जूहरीली दवा खा ली। वह मर गई।

मैं न जाने क्यों मां और बुला की मृत्यु के बाद, कॉलेज में नौकरी न कर वेश्याओं के बच्चों को पढ़ाने लगी।

माधवी के चेहरे पर पीड़ा थी। वह बोलीं, “एनजीओ के सचिव ने एक दिन कहा, “मैं ठीक से काम नहीं कर रही।” वे पैसे भी कम दे रहे थे। वहां पर एक व्यक्ति जो लड़कियों के जीवन पर उनकी समस्या पर ‘जन मंच’ नाटक करते थे बाद में पता चला कि कई लड़कियों से उनका प्रेम था और वे कइयों के साथ प्रेम का नाटक कर रहे हैं। मैंने उनके बारे में बोलना शुरू कर दिया था। इसलिए वहां के सचिव मुझे वहां से हटाना चाहते थे। बाद के सालों में मुझे लगा कि अपने घर से ही काम करना चाहिए। एक के लिए ही यदि कर पाएं तो भी काफी है। मैं शरत को और भी कई बातें बताती रही और वह लिखता रहा। उसने मुझसे बाबा के बारे में फिर पूछा। मैंने कहा, “बाबा मां के मरने के बाद मेरे पास आए थे। वह थक चुके थे। वह शहर छोड़ कहीं और रहना चाहते थे। मुझसे साथ चलने को कहा। मैंने बाबा को मना कर दिया। मैं उनके साथ कैसे रह सकती थी। मैंने बाबा को बताया कि मां अंतिम दिनों में गुरुदत्त की उन फिल्मों की बात करती थी जो उन्होंने आपके साथ विवाह के पहले देखी थी।

मैंने शरत को देखा। मुझे वह स्वाति के साथ सुखी मालूम पड़ा। मैंने उससे उसके बारे में पूछना चाहा तो वह अपनी बेटी की बात बताता रहा। उसकी बेटी ने बारहवीं की परीक्षा इस बार दी है, वह पेंटिंग करती है। मैं उसकी बातों में उस शरत को खोजती रही जिसे मैंने नीले जींस और केसरिया कुरते में देखा था। मैं पुणे का वह आकाश देखती रही

जो वह पत्रों में मुझे दिखाता था। चांद के पड़ोस में शुक्रतारा आज भी वहां होगा और रविवार को आकाश तारों से लबालब भरा होगा या नहीं यह मैं उससे पूछना चाहती थी। कैसा रहस्य है कि इस शरत को उसके बारे में कुछ भी पता नहीं। उसने यह नहीं पूछा कि मैंने विवाह क्यों नहीं किया? मैं बहुत चाव से उससे मिल रही थी पर वह अपने काम की ही बात करता रहा। वह मेरा इंटरव्यू ही लेता रहा। इंटरव्यू सफारी पार्क के गुलमोहर के पेड़ के पास के उसी बेंच पर हो रहा था जहां मैं शरत की शादी और मां की मौत के बाद आकर घंटों बैठा करती थी। आज जब वह मुझे देख रहा था तब उसमें उन वर्षों की फुहार नहीं थी। वह दिनेश राय की बेटी एक सामाजिक कार्यकर्ता को देख रहा था। मैं एक घंटे उसके पास बैठ जाने लगी कि मैंने देखा शरत के सिर पर गुलमोहर की एक-दो पत्तियां गिर बालों में फंस गई हैं। मैंने अपना हाथ उन पत्तियों को हटाने के लिए बढ़ाया तभी उसने पूछा, “क्या कनेर को पीस कर लगाने लगूं?”

मैंने देखा उसके बाल कम हो गए थे।

मैंने मुस्कुराने की कोशिश की पर मेरी आंखों से आंसू बहने लगे। मेरी आंखों में आंसू क्यों उमड़ आए थे?

ऐसा कह माधवी चुप हो गई। इस बारिश में मैंने उनकी आंखों में अथाह अकेलेपन को देखा। पहली बार मोतीलाल नेहरू रोड में हो रही बारिश में आंखों से होने वाली बारिश को सुना। मैंने लिखना बंद कर दिया। मेरी आंखें डबडबा आईं।

संपर्क : 6-रिची रोड, कोलकाता-700019, मो. 09433855014



1 जून, 1970 ग्राम सिपलपुर तह सिपल जिला विदिशा में जन्म। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कविताएं, कहानियां और सहायक प्रकाशित। कुछ पुस्तकें भी प्रकाशित। कहानी के लिए 'राजस्थान पत्रिका' का प्रथम पुरस्कार। कविता के लिए रज्जु सम्मान। संक्षेप : 'कोल्लज कला आर्ट' पत्रिका का संपादन। 'थिपुल्स समाचार' भोपाल में कार्यरत।

इतिहास की शिला पर

धरती का छोटा-सा हिस्सा हैं हम और तुम
पानी के करीब खिले फूल में समाहित
झील के खूबसूरत एहसास की तरह
तुम इस धरती पर एक सुंदर रेखा हो
जिसे ईश्वर ने इंद्रधनुष के पेन से लिखा है
जिन पत्थरों पर तुमने लिखी हैं
अपनी मुस्कुराहटें
उनमें मेरा भी वक्त दर्ज है
इतिहास के खूंखार हिस्सों का
सबसे लाल हिस्सा

इस सब के बाद तुम उठ कर आई हो
अंधेरों से भरे इतिहास की
कई काली रातों के आगे
तुमने पार किए हैं जीवन के सबसे घने संघर्ष

तुम्हारे बालों के काले रंग पर जो सौंदर्य है
उसमें लिखी हैं मेरे इतिहास की कहानियां

तुम्हारे होंठों के चमकीले इंद्रधनुष
मेरे इतिहास का सबसे सुनहरा वक्त बन गए
तुम्हारी आंखों में भविष्य की सबसे सुंदर
कल्पना तैर रही है
झील के किनारे लिख रहे हैं
तुम पर खूबसूरत निबंध
इन नदियों-तालाबों के पानी की लहरों पर
तुम्हारी मुस्कुराहट ने लिखा है
सबसे अच्छा वक्त
पानी की लहरों को बनाया
तुमने सबसे चमकदार

तुम वक्त की जिस लाल शिला
पर बैठी हो संस्कृति
उसमें अनंत व्याख्याएं हैं
मेरी और तुम्हारी

पृथ्वी पोस्टर

पृथ्वी घूमता हुआ पोस्टर है
जिंदगी रोड पर चली मशीन
की तरह हो चुकी है

पृथ्वी की सतह पर चिपका है मेरा शहर
जिसे मैंने बनाकर लगाया था बचपन में



हर शहर एक चमकता हुआ वाक्य है
पृथ्वी के पोस्टर पर लिखा
उसके बेचने और बिकने का सवाल
पृथ्वी को खरीदेगी कोई कंपनी?
हवाएं उसका हिस्सा होंगी- उसकी संपत्ति
धूप की अग्रिम बुकिंग हो चुकी होगी
मैं कविता लिखने के लिए
खरीदूंगा एक टुकड़ा

नहीं बचा प्रोडक्ट होने से कोई पेड़
मुझे चुकाने होंगे प्राकृतिक दृश्यों के पैसे
मैं पहले से ही चुका रहा हूँ कुछ-न-कुछ
विशाल सीडी मेरे दिमाग
के ऊपर घूम रही है।

इस दुनिया में

पहाड़ों के पीछे बने हैं इंसानों के शहर
तुम दोनों के बीच एक हरी-भरी जगह हो
तुम दोनों के बीच एक मंदिर हो
जिसमें लिखी हो मुस्कुराहटों की ऋचाएं

मैं लिखकर नहीं खोज पा रहा तुम्हें
तुम किसी समंदर की तलहटी में बहती
धारा हो
जहां समय डूबे हुए
जहाज की तरह पड़ा है

लहरों की हिलिहलाहट में तुम
पूजा का हिलता-डुलता फूल हो
किसी भक्त ने तुम्हारी नियति से पूछे बिना
इन लहरों को समर्पित कर दिया है
तुम अपने वक्त का सबसे सुंदर वाक्य हो
जिसमें जुड़े हैं आज की दुनिया के कई अर्थ
तुम्हारा इस दुनिया में होना
दुनिया की सार्थकता पाने की तरह है

हम सब अर्थ ही तो खोज रहे हैं तुम्हारे बिना
तुम्हें पाने की कोशिश में भटक रहे हैं दिन-रात।

किसी धुंधलेपन में

तुम्हारे धुंधलेपन पर शाम कुछ लिख रही है
कुछ कांच कुछ दीवार पर रंग बना रही है
तुम्हारा चेहरा भी है फूल की तरह

शाम की इस महफिल में
आसमान भी धुंधला हो गया
शहर में भगदड़ मच गई है
सड़कें भी इस धुंध में डूबने
से बचने के लिए
इतिहास में दौड़ते वक्त के साथ हो गई है

घरों की ओर भागते कामगारों ने
भी इशारा समझ लिया है
प्रबंधकों, मालिकों ने कारों की
लाइटें जला ली हैं
बालकनी में आई औरतें और
लड़कियां सूरज को देख कर अंदर हो गईं

शहर पूरा धुंध में समा रहा है
धुंध से बचने के लिए स्ट्रीट लाइटों को
जगमगा दिया है।

संपर्क : टॉप-12, हाई लाइफ कॉम्प्लेक्स,
चर्च रोड, जहांगीराबाद, भोपाल (म.प्र.)
मो. 9826782660



19 अप्रैल, 1990 फतेहाबाद (हरियाणा) के पीली मंदोरी गांव में जन्म। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कविताएं और लेख प्रकाशित। चौधरी देवी लाल विश्वविद्यालय से जनसंचार में स्नातकोत्तर। प्रिंट और टी.वी. पत्रकारिता में तीन साल काम करने के उपरान्त फिलहाल फतेहाबाद के मनोहर मेमोरियल पी.जी. कॉलेज में सहायक व्याख्याता (जनसंचार)।

एक

हमारी बातों की वर्णमाला से रची जानी थी
प्रेम की कई भाषाएं
कई तारे टूटने थे निश्चल आकाश से
कई मिन्नतें अभी और तुम्हारी झोली में रखी
जानी थीं,
धुआं इतना क्रोधित तो नहीं होता
कि वो एकदम किसी की आंख छीन लेने
की हिमाकृत रखे,
न ही श्वास क्रियाओं में वायु इतनी देर
रुकती है कि प्राण छीन लिए जाएं
तुम्हारे धैर्य पर बार-बार शरमाऊंगा मैं,
बार-बार होगा किसी दैवी शक्ति की
सहनशीलता पर चिंतन
जितना अंतर 'होटों पर होठ रख देने' और
'चुंबन' के मध्य होता है
उतना ही अंतर था मेरी क ख ग
और तुम पर विश्वस्त हो जाने के बीच की
दूरियों का
तुम्हारी शांत-सम्मोहक आंखों ने
बीते बरस मेरी कई झपकियां चुराई और
शरीफ होने का दावा किया
जो तुम समर्पण और शांतिरी के ठीक
बीचोबीच एक दखल-सा दर्ज करती हो न!
गुलाब और कांटों के बीच की विश्वसनीय
जगह सरीखा दखल,
वो प्रेम को समझौतों में बदलता रहेगा हरबार,
सदा की तरह
ओस की नमी से
जैसे खुले में पड़ा कोई बीज चाहता है

जन्म लेना और सुबह की किरणें
पुनः सोख लेती है उसकी नमी
इस तरह एक और प्रेम से वर्चित रहती
जाओगी तुम
एक और संभावना कत्ल होगी
जिसे बनना था
एक उन्मुक्त आकाश...

दो

बीती रात अंबर के सीने पर कई-कई जख्म
देखे मैंने
ख्वाब था ये कोई
या आइनों में दिखती जलजलों की रूखी
शक्ल
उदास आकाशगंगाएं
डूबी है इक शांत शोकलहर में...
और चांद-तराने बुन रहा है उच्च स्वर की
सहानुभूतियों के,
अस्तित्व तलाशता
इक पुराना गीत छटपटा रहा है
धुलावों की भोली शक्ल लिए
लंबे परों की
एक सुंदर बुलबुल नज़में बुन रही है
मदिरा सरीखी,
या धुओं में लिपटी उदास नज़म
अचेतन के एक फलक पर बैठे मेरे एक प्रेत
ने लाल रंग की कई साड़ियां बदली
और तुम्हारे जैसी औरत होने का ढोंग किया...

प्रेत ने उन दिनों को याद किया जब तुम्हारे
चिट्ठियां लिखने के दिन थे,
और तीन-तीन पुरुष एक-साथ चलते थे
तुम्हारे सुहाने ख्वाबों के बीच...
मैं ये सच जानकर चिल्ला उठा और एक
सिगरेट जला ली...
इस सिगरेट के धुएं ने एक पंछी की शक्ल
इख्तियार की
जिसकी आंखें बिल्कुल तुम्हारे जैसी थीं...

तीन

मुझे क्या पता मैं ठीक नहीं हूँ?
मैंने हवाओं को आशीर्वाद माना, और वे मुझे
चूमती गईं,



मुझे क्या पता आग ठिठुरते बदन का लिहाफ़
होती है या पेहरन बन जाती है
कार्तिक का शुक्ल पक्ष गुजरते-गुजरते?
जिन छातियों से आकाशगंगाएं बहनी थीं वे
बहीं तो नहीं
फिर क्यों शापित हुआ मैं,

दर्द से छलनी जिन सीनों की पटकथाएं बुननी
वांछित थीं
वे हाशिये पर ही रहे
तुम्हारी बनावटी कहानियों की पकड़ से,

तुम्हारी कुछ बिल्लियों के बच्चे नीली आंखें
लिए हुए थे
मुझे नहीं पता जिन अंधेरी रातों की खुली
छतों पर जब बिल्लियों ने गर्भधारण किए
तो नर-बिलाव भी नीली आंखों वाले थे
या गर्भवती बिल्लियों पर तुम्हारे हाथों के
दुलार से उनकी आंखें नीली हो गईं ?

मैं किसी भी नीले आसमां की आंखों में
तुम्हारी कविताओं का नीलापन नहीं देखता
अब और न ही उसकी पीठ पर तुम्हारे
विपरीत रक्त-समूह के नाखूनों की खुरचनें,

मैं अपनी मौत की चिट्ठियों में ये घोषित
करता मिलूंगा
कि कब्र के पत्थर पर तुम्हारे नाम के साथ
मेरा नाम कदापि न लिखा जाए
मैं बच्चा रहते ही दफन होना चाहता हूँ। □

संपर्क : गांव व डा. पीली मंदोरी, जिला व
तहसील फतेहाबाद (हरियाणा)
मो. 9017738638

महान् संगीतज्ञों का पुण्य स्मरण

पं. विजयशंकर मिश्र

महान् गायिका तुमरी की रानी विदुषी गिरिजा देवी की याद में दिल्ली की सांस्कृतिक संस्था 'वेनू' ने पिछले दिनों श्रीसत्यसाई इंटरनेशनल सभागार में एक सुंदर और सार्थक आयोजन किया जो सचमुच गिरिजा देवी पर केंद्रित था, रस्म अदायगी मात्र नहीं। सांगीतिक संध्या का शुभारंभ महाप्राण निराला की प्रसिद्ध कविता 'वर दे वीणा वादिनी' से हुआ जिसे गिरिजा देवी की एक प्रमुख शिष्या और इस कार्यक्रम की आयोजिका पद्मजा चक्रवर्ती ने बिल्कुल नए अंदाज़ में स्वरबद्ध किया और जिसे उनके शिष्य-शिष्याओं ने सामूहिक रूप से प्रस्तुत किया इन पंक्तियों के लेखक ने मंच पर पंडित बिरजू महाराज, विदुषी उमा शर्मा, साहित्य कला परिषद् की सहसचिव और सुप्रसिद्ध भरतनाट्यम नर्तकी विदुषी सिंधु मिश्रा, विदुषी मालिनी अवस्थी तथा प्रख्यात नृत्यांगना विदुषी शास्वती सेन को मंच पर आमंत्रित किया।



नर्तकी विदुषी सिंधु मिश्रा ने एक आयोजक के रूप में अपने अनुभवों को साझा करते हुए बताया कि गिरिजा देवी कितनी सहज, सरल और सहयोगी स्वभाव की थीं। गिरिजा देवी की शिष्या पद्मश्री मालिनी अवस्थी के अनुसार ऐसा गुरु मिलना बहुत कठिन है। वे अपने शिष्यों का पुत्र-पुत्रियों की तरह ध्यान रखती थीं।

इसके बाद दिल्ली घराने के सुप्रसिद्ध वायलिन-वादक उस्ताद असगुर हुसैन और फर्रुखाबाद घराने के सुप्रसिद्ध ताबलिक उस्ताद अख्तर हुसैन ने मंच संभाला। असगुर हुसैन ने इस शाम राग भूपाली की सुंदर अवतारणा की। उनकी गतें चारताल की सवारी (11 मात्र) में और तीनताल (16 मात्र) में निबद्ध थीं। स्वर और लय दोनों का काम सराहनीय था। असगुर हुसैन ने अपने वादन का समापन एक मर्मस्पर्शी धुन से किया। उस्ताद अख्तर हुसैन की तबला संगत

काफ़ी सहयोगपूर्ण रही। इसके बाद मंच पर पदार्पण हुआ गिरिजा देवी की प्रमुख शिष्या पद्मश्री विदुषी मालिनी अवस्थी का। मालिनी ने कहा कि आज मैं गाने के लिए नहीं अपनी गुरु की कुछ रचनाओं को आप को विशेष रूप से सुनाने के लिए आई हूँ। उनके साथ हारमोनियम पर पंडित धर्मनाथ मिश्र तथा तबले पर पंडित रामकुमार मिश्र जैसे दिग्गज कलाकार थे। मालिनी ने अपने गायन की शुरुआत मिश्र खमाज की प्रसिद्ध तुमरी 'नाजुक बड़ियां क्यों मरोरी' से किया। इसके बाद दादरा 'भीजी जाऊं पिया मैं बचाय लीनों' गाकर उन्होंने सबको प्रेम और संगीत के रस में डुबो दिया। मिश्र पहाड़ी मे खुद गिरिजा देवी की लिखी हुई दादरा 'मत जइहो वाही नगरिया हो श्याम', खंवावती जैसे राग में 'होली-होली खेलो मोसे नंदलाल', लोगों की फरमाइश पर 'अँखियां मलत गुलाल' और अंत में



पत्रिका का लोकार्पण

चर्चा की शुरुआत करते हुए इन पंक्तियों के लेखक ने गिरिजा देवी के व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डालते हुए कई नए तथ्यों को उजागर किया। इसके बाद पंडित बिरजू महाराज ने बताया कि गिरिजा देवी उनके श्वसुर पंडित श्रीचंद्र मिश्र की प्रमुख शिष्या थीं इसलिए जब उनकी शादी हुई थी तो शादी की सारी ज़िम्मेदारी उन्होंने ही संभाली थी। महाराजजी ने उन अनुभवों को भी साझा किया जब दोनों एक साथ मंच पर होते थे। तब हंसी-मजाक का भी दौर चलता था क्योंकि महाराजजी उन्हें अपनी साली कहते थे। पद्मभूषण विदुषी उमा शर्मा ने बताया कि गिरिजा देवी की गायकी दूसरों से किन अर्थों में भिन्न थी। विदुषी शास्वती सेन ने भी उनकी गायन विशेषताओं की चर्चा करते हुए कहा कि ईश्वर को चाहिए कि ऐसे महान लोगों को कुछ ज्यादा उम्र दे। साहित्य कला परिषद् की सहसचिव और सुप्रसिद्ध भरतनाट्यम

एक और दादरा 'नयन की मत मारो तलवरवा' गाकर मालिनी ने न केवल अपना रंग जमाया बल्कि गिरिजा देवी को जैसे मंच पर साक्षात् उपस्थित कर दिया। धन्यवाद ज्ञापन पद्मजा चक्रवर्ती ने किया। कार्यक्रम का सुंदर और संगीतमय संचालन इंद्राणी बनर्जी ने किया। इस अवसर पर एक आकर्षक स्मारिका का प्रकाशन और लोकार्पण भी हुआ।

● महाशिवरात्रि के अवसर पर सरगम मंदिर द्वारा आज़ाद भवन में संगीत का एक सुंदर कार्यक्रम आयोजित हुआ। सरगम मंदिर का यह 55वां आयोजन था। सरगम मंदिर की स्थापना पंडित जगदीश मोहनजी ने की थी जो स्वयं अच्छे गायक, रचनाकार, अध्यापक और तबला के जानकार थे। उनके अनेक शिष्य, बेटे, बेटी सभी संगीत की सेवा में संलग्न हैं। कुछ महीने पहले ही पंडित जगदीश मोहनजी का देहावसान हुआ है और उनके निधन के बाद सरगम मंदिर का यह पहला आयोजन

था। इसलिए कुछ विशेष भी था। कार्यक्रम के आरंभ में पंडितजी और सरगम मंदिर पर एक वृत्तचित्र का प्रसारण हुआ जिससे यह जानने को मिला कि विगत 55 वर्षों में सरगम मंदिर ने कितने महान् संगीतकारों को अवसर दिया है, और कितने ही संगीतकार सरगम मंदिर के रास्ते पर चलकर आज अंतरराष्ट्रीय ख्याति के कलाकार बने हुए हैं। कार्यक्रम का शुभारंभ पंडित जगदीश मोहनजी के शिष्यों द्वारा प्रस्तुत संगीतांजलि कार्यक्रम से हुआ जिसका नेतृत्व पंडितजी की सुपुत्री रागिनी प्रताप कर रही थीं, साथ में मधुरलता भटनागर, पंडित हरिदत्त शर्मा, कामोद शर्मा, ज्ञानेंद्र शर्मा और राजेंद्र शर्मा आदि थे। तबले पर पंडित आशीष सेनगुप्ता और हारमोनियम पर सुमित मिश्र की संगत काफी सहयोग और उत्साहपूर्ण रही। इस प्रस्तुति के दौरान विभिन्न रागों में विभिन्न प्रकार की उन रचनाओं को प्रस्तुत किया गया जिनकी रचना पंडित जगदीश मोहनजी ने की थी।

चेतन जोशी युवा पीढ़ी के प्रखर बांसुरी वादक हैं। इस शाम उन्होंने राग जोग की भावपूर्ण अवतारणा की। यद्यपि उनके हिस्से में समय कम था, उन्होंने कहा भी कि केवल थोड़ी-थोड़ी झलक दिखा रहा हूँ, तथापि उनका बांसुरी अपना प्रभाव छोड़ने में सफल रहा। उन्होंने राग जोग की सुविचारित अवतारणा की। मध्यलय रूपक, द्रुत त्रिताल और फिर अति द्रुत त्रिताल में उन्होंने गायकी और तंत्रकारी अंग से अच्छा वादन किया। 'साजन मोरे घर आए' बंदिश का उन्होंने गायकी अंग से वादन किया और गले की हरकतों को साज पर उतारने की सफल कोशिश की। सम पर आने का अंदाज़ भी समझदारी भरा था। बांसुरी जैसे श्रमसाध्य साज पर अति द्रुत गति में वादन करते हुए भी लय और स्वर पर पकड़ बनाए रखना मुश्किल होता है जिसे चेतन ने असानी से कर दिखाया। तबले पर देवाशीष अधिकारी ने अच्छी संगत की। समारोह का समापन उस्ताद रफीउद्दीन सावरी के स्वतंत्र तबला वादन से हुआ। रफीउद्दीन ने त्रिताल में अपना वादन प्रस्तुत करते हुए सर्वप्रथम पेशकार के माध्यम से लय के दर्जे दिखाए, उसके बाद धीनगिना, तिरकिट और धिरकिट की अनेक रचनाओं का प्रदर्शन आकर्षक अंदाज़ में किया। उनकी तैयारी चमत्कृत करने वाली थी। सुमित मिश्र



मंजू मेहता सितारवादन करते हुए

ने सर्वप्रथम गायन के साथ फिर रफीउद्दीन सावरी के साथ सुंदर हारमोनियम वादन करते हुए अपनी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय दिया।

● प्रवाह एक ऐसी संस्था है जो पुराने और नए कलाकारों को एक साथ मंच प्रदान करने का निरंतर प्रयास कर रही है। हाल ही में प्रवाह ने इंडिया हैबिटेड सेंटर के अमलतास सभागार में एक भव्य



पंडित विश्व मोहन भट्ट, पंडित सलिल भट्ट और अभिषेक मिश्र

सांगीतिक आयोजन किया जिसमें इंदौर से आई विदुषी शोभा चौधरी और अहमदाबाद से पधारी विदुषी मंजू नंदन मेहता ने शिरकत की। देश-विदेश के प्रतिष्ठित मंचों पर सक्रिय शोभा चौधरी आई सी सी आर द्वारा चयनित कलाकार हैं। शोभाजी ने अपनी प्रस्तुति का शुभारंभ राग श्री, विलंबित एकताल में निबद्ध एक बंदिश से की, जिसके बोल थे- सांझ भई आओ रे, हरी के गुण गाओ रे। इसके बाद इन्होंने अपने गुरु पंडित सी. आर. व्यास की रचना, सांझ की बेर, सुमिर हरि नाम' और 'काहे डरपाऊं मैं, बरसे कृपा मोपर' की प्रस्तुति की। शोभाजी ने अपनी प्रस्तुति का समापन एक चैती 'सब वन अम्बवा बोले रे रामा, पिया घर नहीं' से की। आजकल के दौर में जहां लोग तेज़तर्रार तानें और गायकी पसंद करते हैं वहीं शोभाजी की गायकी ठहराव से भरपूर और हृदय को राहत पहुंचाने वाली है। शोभाजी के साथ तबले पर संगत सुभाष काति दास और हारमोनियम पर जाकिर धौलपुरी ने अच्छी संगत की। इस संगीत संध्या की समापन प्रस्तुति विदुषी मंजूनंदन मेहता का भावविभोर कर देने वाला सितार वादन था। मंजू मेहता एक अंतरराष्ट्रीय ख्याति की कलाकार हैं। मंजूजी ने सितार की आरंभिक शिक्षा अपने अग्रज पं. शशिमोहन भट्ट और इनके उपरांत स्कॉलरशिप मिलने पर

पं. दामोदरलाल कावरा से प्राप्त की। भारतरत्न स्व. पं. रविशंकर जी से भी सितार की गूढ़ बारीकियों को सीखने का स्वर्णिम अवसर मंजूजी को मिला है। देश-विदेश के उच्चश्रेणी के मान-सम्मानों से मंजूजी को अलंकृत किया जा चुका है। इस सम्मेलन में मंजूजी ने ताल रूपक विलंबित लय और तीनताल द्रुतलय में राग गावती की सुंदर एवम् मनोरम प्रस्तुति की। मंजूजी का सितारवादन सुंदर अत्यंत सुरीला है। उनकी प्रस्तुति में लय का भी अच्छा काम दिखा। मंजूजी के साथ तबले पर पं. आशीष सेनगुप्ता ने काफी सूझबूझ से संगत की।

● तराना आर्ट एंड म्यूज़िक का दो-दिवसीय समारोह क्रमशः हैबीटेड और चिन्मय मिशन में संपन्न हुआ। पहले दिन के मुख्य आकर्षण पंडित विश्वमोहन भट्ट और उनके सुयोग्य सुपुत्र सलिल भट्ट का मोहन वीणा और सात्विक वीणा वादन था। पिता-पुत्र ने इस शाम राग बागेश्री और मालगुंजी की संयुक्त प्रस्तुति की। सलिल बागेश्री बजा रहे थे और भट्टजी मालगुंजी। दो अलग राग होने के बावजूद ये दोनों राग एक-दूसरे के काफी नजदीक हैं। दोनों रागों के मार्मिक स्थलों को उभारते हुए दोनों कलाकारों ने राग का सुनियोजित विस्तार किया। भट्टजी का आज का वादन यादगार साबित हुआ। युवा पुत्र सलिल और युवा ताबलिक अभिषेक मिश्र के बीच में बैठे पंडित

विश्वमोहन भट्ट ने अपनी वरिष्ठता और श्रेष्ठता का सुंदर परिचय दिया। सलिल भट्ट ने भी सुयोग्य पिता के सुयोग्य संतान के रूप में अपना बखूबी परिचय दिया। अभिषेक मिश्र का तबला वादन भी अपनी छाप छोड़ने में सफल रहा। बाद में भट्टजी ने एक गज़ल गाकर सुनाया, 'आज जाने की ज़िद ना करो, जिस पर बाल कलाकार ऋतोजा चौधरी ने अत्यंत आकर्षक भावभिनय प्रस्तुत किया। अगले दिन का कार्यक्रम चिन्मय मिशन के सभागार में युवा ताबलिक क्षितिज जौहरी के स्वतंत्र तबला-वादन से आरंभ हुआ। इस शाम क्षितिज ने पंचम सवारी जैसे कठिन ताल में कई अच्छे बोलों की अच्छी प्रस्तुति करके खूब वाहवाही लूटी। पेशकार, कायदे, रेलें, टुकड़े और परनों की एक-के-बाद एक प्रस्तुति करके क्षितिज ने अपनी प्रतिभा का अच्छा परिचय दिया। इनके साथ सारंगी पर पंडित घनश्याम सिसोदिया ने अच्छी संगत की।

● शेरॉन लोयेन ओडिशी नृत्य की बड़ी नृत्यांगना हैं, इसे उन्होंने एक बार फिर सिद्ध किया। अपने शिष्य विश्वनाथ मांगराज के साथ उन्होंने भावभीनी प्रस्तुति की। विश्वनाथ द्वारा प्रस्तुत आकर्षक पल्लवी के बाद अष्टपदी याही माधव याही केशव पर भावपूर्ण अभिनय किया शेरॉन ने। इसके अंतर्गत गुस्सा, उलाहना, प्रेम, समर्पण आदि भावों का चित्रण अत्यंत मार्मिक था जिसकी पराकाष्ठा मोक्ष में दिखी। शेरॉन जब अभिनय करती हैं तब ऐसा लगता है जैसे अजंता-एलोरा के चित्र दीवारों से निकलकर मंच पर जीवंत हो गए हों। इस शाम तराना द्वारा प्रकाशित एक स्मारिका का लोकार्पण पंडित बिरजू महाराज और दूसरे गणमान्य लोगों द्वारा हुआ। यह स्मारिका बिरजू महाराज के अस्सीवें जन्मदिन पर उन्हीं पर केंद्रित है किंतु इसके आवरण पर महाराजजी का हारमोनियम बजाता हुआ चित्र चौकाता है। अच्छा होता अगर नृत्य की मुद्रा में कोई चित्र होता। इस शाम का सुंदर समापन पंडित बिरजू महाराज द्वारा निर्देशित कला आश्रम की छात्राओं द्वारा प्रस्तुत सामूहिक कथक नृत्य से हुआ, जिसका अंतिम अंश होली था। इसकी एक विशेषता यह भी थी कि स्वयं बिरजू महाराज ने इसके साथ हारमोनियम वादन किया। यह एक बड़े कलाकार की बड़ी पहचान है।

● पंडित नदन मेहता की स्मृति में सप्तक स्कूल ऑफ म्यूजिक (अहमदाबाद) द्वारा आयोजित पंडित नंदन मेहता स्मृति तालवाद्य स्पर्धा विगत दिनों अहमदाबाद में भव्य रूप में संपन्न हुआ, जिसमें देश के भिन्न-भिन्न भागों से आए प्रतियोगियों ने चमत्कारिक प्रदर्शन किया। अंतिम निशा दिवंगत पंडित मेहता की याद में एक समारोह भी आयोजित हुआ, जिसमें लंदन से पधारे प्रतिष्ठित ताबलिक पंडित संजू सहाय ने बनारस घराने की अनेक रचनाओं का वादन करके लोगों पर अपनी अमिट छाप छोड़ी। ठेके की बढ़त करते हुए विभिन्न प्रकार के कायदों, रेलों, बांट, लयबांट, टुकड़े, परनों, गतों और फरदों का उन्होंने चमत्कारिक वादन किया। उड़ान का फर्द, जातियों के प्रकार, धिरकट और तिरकट के हर प्रयोग पर सभागार तालियों से गूंज उठता था। बोलों का शुद्ध और सही निकास, लय के बारीक प्रयोग और अर्चभित करने वाली तैयारी के कारण संजू खूब प्रशंसित हुए। मुंबई के उस्ताद दिलशाद खान ने सारंगी पर इनकी बहुत ही अच्छी संगत की। गुजरात संगीत नाटक अकादमी के सहयोग से आयोजित इस भव्य समारोह का अत्यंत भावपूर्ण समापन पंडित उल्हास कसालकर के भाव-विभोर कर देने वाले गायन से हुआ। पंडित कलासकर ने ज्योंही राग मालकोंस के सुरों को छोड़ा सभागार आह और वाह की ध्वनि से गूंज उठा। इनके साथ तबले पर पंडित रामदास पड़सुले और हारमोनियम पर पंडित सुधीर नायक ने बहुत ही अच्छी संगत की। बिलंबित रचना 'दया करो रघुनाथ' तिलवाड़ा ताल में निबद्ध थी, लेकिन यहां यह बताना भी आवश्यक है कि महाराष्ट्र का तिलवाड़ा शेष भारत के तिलवाड़ा की तरह सीधा नहीं होता है बल्कि



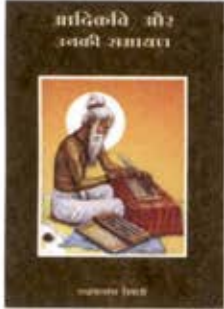
तबला विद्वान पंडित अरविंद मूलगांवकर

उसमें भी झूमरा वाली वक्र चाल का प्रयोग होता है। मध्यलय की रचना झपताल में थी-श्याम सुंदर। तान ही नहीं कई बार अलाप में भी कलासकरजी ने कठिन लयकारियों का बोध कराया। रस में डूबी तानों ने श्रोताओं को रसविभोर कर दिया। इसके बाद एक सुंदर तराना सुनाकर उन्होंने राग वसंत की सुंदर प्रस्तुति की। मशहूर छोटा ख्याल 'फगवा बूज देखन को चलो री' और एक तराना गाकर उन्होंने अपने गायन को विराम दिया किंतु दर्शकों का दिल नहीं भरा था। अतः उनकी पुरजोर फरमाइश पर उन्होंने भैरवी में 'सनद पिया की' एक मार्मिक ठुमरी भी सुनाई। उनके साथ गायन पर उनके शिष्य ओजेश प्रताप सिंह ने अपनी प्रतिभा का अच्छा परिचय दिया।

इस स्तंभ को लिखते-लिखते दो वरिष्ठ संगीतकारों के निधन की दुखद सूचना मिली। सरोद वादक पंडित सुनील मुखर्जी (दिल्ली) और तबला विद्वान पंडित अरविंद मूलगांवकर (मुंबई) अब हमारे बीच नहीं रहे। यद्यपि दोनों ही उम्र के आखिरी पड़ाव पर थे और लंबे समय से बीमार भी। बावजूद इसके दोनों ही संगीत की सेवा में लगे हुए थे। इन दोनों ही संगीतकारों ने एक कलाकार के साथ-साथ एक गुरु के रूप में भी संगीत जगत की खूब सेवा की है। पंडित सुनील मुखर्जी को साहित्य कला परिषद् सम्मान सहित कई अन्य मान-सम्मान भी मिले थे जबकि पंडित मूलगांवकरजी को इसी वर्ष केंद्रीय संगीत नाटक अकादेमी सम्मान से सम्मानित किया गया था। करीब 40 वर्ष पहले मूलगांवकरजी ने मराठी भाषा में 'तबला' नामक एक पुस्तक लिखी थी जो आज भी मील का पत्थर मानी जाती है। लगभग एक दशक पूर्व मैंने उन्हें सलाह दी थी इस पुस्तक के हिंदी अनुवाद को प्रकाशित करने की। उन्होंने बताया कि उनकी हिंदी बहुत अच्छी नहीं है। फिर उन्होंने उसका हिंदी अनुवाद कराकर मुझे दिखाते हुए कहा कि आप इसे अपडेट करिए। मैंने खुशी-खुशी यह काम कर दिया था। प्राप्त सूचना के अनुसार पुस्तक प्रेस में है। उनके ऊपर एक संगीतार्थी शोधकार्य भी कर रहे हैं। दोनों ही संगीतकारों को अंतिम प्रणाम! □

संपर्क : 'शंकरा', 705 डी/21 सी, वाई सं. 3, महारौली, नई दिल्ली-110030 मो. 9810517945

आदिकवि और उनकी रामायण



आदिकवि और उनकी रामायण
लेखक : राधावल्लभ त्रिपाठी
प्रकाशन विभाग, सूचना भवन,
सीजीओ कॉम्पलेक्स, लोधी रोड,
नई दिल्ली-110003
पृष्ठ : 127
मूल्य : 95 रुपये

'आदिकवि और उनकी रामायण' पुस्तक 'सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन' और 'प्रकाशन विभाग' की संयुक्त प्रकाशन योजना के अंतर्गत प्रकाशित हुई है।

भारतीय परंपरा में 'रामायण' को आदिग्रंथ और महर्षि वाल्मीकि को आदिकवि माना गया है। वाल्मीकि को 'रामायण' की प्रेरणा देवता से नहीं बल्कि अपने ही करुणविह्वल हृदय से प्राप्त हुई थी। कथा है कि एक व्याध ने क्रौंच पक्षी का वध किया। इस पर क्रौंचों ने विलाप किया। उससे दुःखी होकर वाल्मीकि ने व्याध को शाप दिया। वह शाप श्लोक के रूप में निकला। वाल्मीकि ने कहा श्लोक:- श्लोकत्वामागतः शोक ही श्लोक बन गया। उसके बाद महर्षि वाल्मीकि ने उसका उपयोग रामायण व्याध लिखने में किया। यह तो महर्षि ही हैं जो विश्वमानव के चिरंतन हृदय वेग और जीवन की मर्मकथा कहने में समर्थ हैं। उन्होंने 'रामायण' में सरल एवं रोचक ढंग से प्रस्तुत किया है कि पढ़ने में पाठक की रुचि बनी रहती है।

हमारी राष्ट्रीयता एक जाति द्वारा दूसरी जातियों पर राजनैतिक प्रभुत्व कायम करके स्थापित नहीं हुई। वह मुख्यतः संस्कृति एवं इतिहास की देन है। भारतीय विद्वान इस विचार पर सहमत हैं कि इस देश की संस्कृति के निर्माण में कवियों की सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका रही है। शायद ही किसी देश की संस्कृति के निर्माण में कवियों की ऐसी अद्भुत भूमिका रही हो, जैसी इस देश की संस्कृति के निर्माण में रही है।

यह एक ऐसी पुस्तक है, जो उन मूल्यों, संकल्पनाओं या अवधारणाओं की जीवंत प्रतिष्ठा करती है, जो भारतीय समाज और संस्कृति के लिए कुछ हजार वर्ष तक मूलधार रहे हैं। ऐसे मूल्यों, संकल्पनाओं या अवधारणाओं में एक है गृहस्थाश्रम की महनीयता और दांपत्य की अनन्य निष्ठा। वाल्मीकि का काव्य स्त्रीत्व की महिमा और गरिमा का काव्य भी है। यह जितनी बड़ी कथा राम की है, उतनी या उससे भी अधिक गहनीय कथा सीता की है। सीता ही नहीं यह अहल्या, मंदोदरी और तारा की भी उतनी ही मार्मिक कथा है।

साहित्य अकादमी सम्मान सहित अनेक सम्मानों से विभूषित राधावल्लभ त्रिपाठी संस्कृत के ख्यातिलब्ध आलोचक, लेखक और शिक्षाविद् हैं। उन्होंने संस्कृत, अंग्रेजी और हिंदी में लेखन किया है। आशा है कि त्रिपाठीजी की इस अनुपम कृति का पाठक सम्मानपूर्वक स्वागत करेंगे। यह उच्चतम मूल्यों का काव्य है, गृहस्थाश्रम का काव्य है। यह कोरा कर्म शास्त्र नहीं है, काव्य है। यह कोरी रामकथा नहीं है, पूरा भारतवर्ष है।

हमारे संस्कार और संस्कृति



हमारे संस्कार और संस्कृति
लेखक : साने गुरुजी
प्रकाशन विभाग, सूचना भवन,
सीजीओ कॉम्पलेक्स, लोधी रोड,
नई दिल्ली-110003
पृष्ठ : 83
मूल्य : 95 रुपये

'हमारे संस्कार और संस्कृति' पुस्तक 'सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन' और 'प्रकाशन विभाग' की संयुक्त प्रकाशन योजना के अंतर्गत प्रकाशित हुई है। वेद, स्मृति, महाकाव्यों के ज्ञान को संत, भक्त कवियों के संदेश को हमारे रोजमर्रा के जीवन से जोड़ते हुए आज के समय और समाज के प्रश्नों, चुनौतियों, समस्याओं के संदर्भ में सार्थक और प्रासंगिक बनाकर संप्रेषणीय भाषा में प्रस्तुत किया गया है।

गुरुजी ने अपनी इस पुस्तक को 'साधारण मनुष्य द्वारा साधारण मनुष्यों के लिए लिखी गई पुस्तक' कहा था क्योंकि यह न तो भारतीय संस्कृति का इतिहास है, न ही संस्कृति की गौरव गाथा। इसमें तो भारतीय संस्कृति के अंतरंग का दर्शन है।

इस पुस्तक में विशेष रूप से ऐसे लेखों को शामिल किया गया है जो हमारे संस्कारों को परिष्कृत करके हमें सुसंस्कृत बनाते हैं। इस पुस्तक के आलेख भारतीय संस्कृति के उन मूल्यवान पक्षों को तलाशते हैं जो आज के प्रश्नों के समाधान में सहायक हो सकते हैं। संस्कृति की समाज-कल्याणपरक व्याख्या करने वाली यह पुस्तक आज की नई पीढ़ी के लिए विशेष रूप से उपयोगी रहेगी। पाठक वर्ग साने गुरुजी के लेखों से प्रभावित होकर और भी अधिक सुसंस्कृत होंगे।

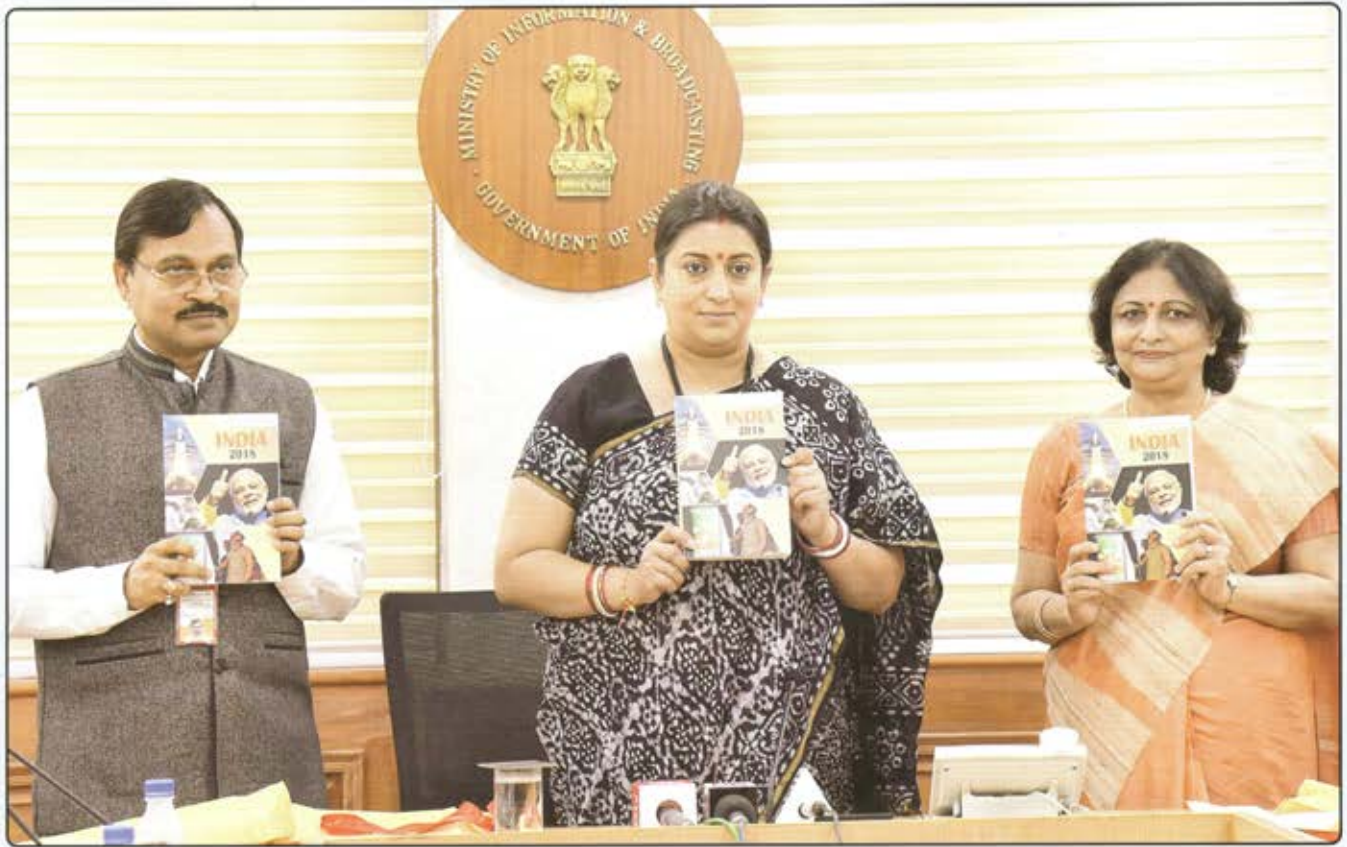
इसमें मनुष्यता, प्रेम, सद्भाव के साथ अपने निजी स्वार्थों से ऊपर उठकर दूसरों की परवाह करने का संदेश है। इस पुस्तक में लोकनायकों, लोक कथाओं, प्रतीकों, आस्थाओं की विवेक-सम्मत वैज्ञानिक दृष्टि से व्याख्या है। रूढ़ियों, अंधविश्वासों, कुरीतियों पर प्रहार है।

पुस्तक के लेखक साने गुरुजी जाति-धर्म पर आधारित भेदभाव का विरोध, शिक्षा का महत्व, स्त्री जागरण-सुधार, बाल विवाह का विरोध तथा ऐसे ही अन्य विषय-संबंधी जनजागृति के लिए कार्यरत रहे हैं।

पुस्तक में भारतीय संस्कृति के बारे में विस्तार से उल्लेख किया गया है। पाठक संस्कृति से जुड़ेंगे तो और संस्कारवान व सुसंस्कृत बनेंगे जिससे आने वाली पीढ़ियां लाभप्रद होती रहेंगी। सरल व रोचक तरीके से संस्कृति से रु-ब-रु कराती है। मनुष्यों में वैर-भाव की भावना स्वतः ही खत्म होने लगती है। अपनेपन की भावना जागृत होती है। मनुष्य संपूर्ण जगत को एक कुटुंब मानने के लिए प्रेरित होता है।

प्रस्तुति : कांता रानी

भारत 2018 तथा इंडिया 2018 का लोकार्पण



सूचना एवं प्रसारण मंत्री श्रीमती स्मृति जुबिन ईरानी ने 27 फरवरी, 2018 को गौरवमय संदर्भ वार्षिकी इंडिया/भारत 2018 का लोकार्पण किया। इस प्रतिष्ठित संदर्भ ग्रंथ का ई-वर्जन भी साथ-साथ जारी किया गया। इस प्रकाशन में ग्रामीण से शहरी, उद्योग से बुनियादी संरचना, विज्ञान और प्रौद्योगिकी से लेकर मानव संसाधन विकास, कला एवं संस्कृति, नीति, अर्थशास्त्र, स्वास्थ्य, रक्षा, शिक्षा तथा जनसंचार तक के राष्ट्रविकास संबंधी सभी पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है। इस वार्षिकी में सरकार के प्रमुख कार्यक्रमों, वर्ष के दौरान हुए महत्वपूर्ण आयोजनों तथा भारत के राज्यों और संघ शासित प्रदेशों से संबंधित महत्वपूर्ण सांख्यिकी की भी झलक देखने को मिलती है। न्यू मीडिया विंग द्वारा उपलब्ध कराई गई सामग्री के आधार पर तैयार वार्षिकी/इंडिया प्रकाशन के 62वें साल में प्रवेश कर चुका है।

इस ग्रंथ का इलेक्ट्रॉनिक संस्करण अत्यंत सहजता से इस्तेमाल की जाने वाली ई-पब फॉर्मेट में तैयार किया गया है तथा इसे टैबलेट, कंप्यूटर, ई-रीडर तथा स्मार्ट फोन जैसे विभिन्न उपकरणों में इस्तेमाल किया जा सकता है। यह ई-बुक तकनीकी रूप से उत्कृष्ट अंतरराष्ट्रीय मानकों के अनुरूप है तथा ग्रंथ के प्रिंट वर्जन की प्रतिकृति है। इसमें बेहतर संचार के लिए पाठक-अनुकूल विभिन्न विशेषताएं जैसे हाइपरलिंक, हाइलाइटिंग, बुक मार्किंग तथा इंटरएक्टिविटी भी शामिल हैं। ई-बुक प्रमुख ई-कॉमर्स प्लेटफॉर्म जैसे amazon.in तथा गूगल प्ले बुक्स में भी उपलब्ध है।

इस अवसर पर श्रीमती स्मृति जुबिन ईरानी ने कहा कि भारत/इंडिया 2018 का ऑनलाइन संस्करण उन शोधकर्ताओं और विद्यार्थियों के लिए सहायक होगा जो इंटरनेट पर जानकारी हासिल करना चाहते हैं। उन्होंने यह भी कहा कि ये न केवल उनके लिए एक संदर्भ पुस्तक के रूप में होगा जो प्रशासन के बारे में पढ़ते हैं बल्कि शोधकर्ता और विद्यार्थी वर्ग के लिए भी उपयोगी होगा।

इस प्रकाशित पुस्तक का मूल्य 350 रुपये है और इसे प्रकाशन विभाग के 8 विक्रय भण्डारों तथा 3 क्षेत्रीय कार्यालयों और देशभर में मौजूद अधिकृत एजेंटों से खरीदा जा सकता है। यह भारतकोष पोर्टल के माध्यम से ऑनलाइन खरीद के लिए भी उपलब्ध है जिसे सीधे अथवा प्रकाशन विभाग की वेबसाइट www.publicationsdivision.nic.in से लिया जा सकता है।

यह ई-पुस्तक जाने-माने ई-कॉमर्स प्लेटफॉर्मों यथा amazon.in तथा गूगल प्ले बुक्स पर 263 रुपये मूल्य पर उपलब्ध है।

डाक तार पंजीयन सं. डी एल (एस) - 05/3222/2018-20 बिना पूर्व भुगतान के साथ आर.एम.एस. दिल्ली से पोस्ट करने के लिए लाइसेंस यू (डी एन)-49/2018-20

Postal Regn. No. DL (S) - 05/3222/2018-20

Licenced U (DN) - 49/2018-20 to post without pre-payment at RMS Delhi

● 10 मार्च 2018 को प्रकाशित

● 21-22 मार्च 2018 को डाक द्वारा जारी

दिल्ली डाक आर एन आई 701/57

Delhi Postal RNI 701/57

● वार्षिक मूल्य : ₹ 230



प्रकाशक व मुद्रक : डॉ. साधना राउत, महानिदेशक द्वारा प्रकाशन विभाग के लिए एजुकेशनल स्टोर्स, गाजियाबाद (उ.प्र.) से मुद्रित एवं प्रकाशन विभाग, सूचना भवन, सीजीओ कॉम्प्लेक्स, लोधी रोड, नई दिल्ली-110003 से प्रकाशित ।

संपादक : फरहत परवीन